卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

ॐ श्रीमते यतीन्द्राय रामानन्दाचार्याय नमोनमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

卐 जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीता 卐

श्रीवैष्णवसन्यासमीमांसा

ॐ रामं सर्वेश्वरं ब्रह्म सीतां तच्छक्तिरूपिणीम् ।
नत्वा सन्यासमीमांसां कुर्वे वैष्णवतुष्टये ॥१॥

गुरुं रामप्रपन्नार्यं नत्वा रामेश्वरो यतिः ।
समयानाकलय्याथ कालग्रस्तं तनोम्यहम् ॥२॥

संन्यासत्यागयोः स्वरूपतत्त्वबुभुत्सया सर्वोपनिषत् सारभूतायां भगवद्

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमोनमः

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीत

प्रकाश

करि प्रणाम रघुपति चरण सीतापद चितलाय ।
भाषा सन्यासमीमांसा करउँ गुरुपद नाय ॥

लोक वन्द्य जगन्नायक सर्वेश्वर परब्रह्म स्वरूप भगवान् श्रीरामजी एवं ब्रह्म शक्ति स्वरूपिणी श्रीरामवल्लभा जगदम्बा श्रीसीताजी को प्रणाम करके श्रीवैष्णवों के परम सन्तोष हेतु इस सन्यासमीमांसा नामक ग्रन्थ की रचना करता हूँ ॥१॥

परम दयालु गुरुवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज को सप्रश्रय वन्दना करके श्रीवैष्णव त्रिदण्डी सन्यासी मैं रामेश्वरानन्दाचार्य श्रीसम्प्रदाय परम्परा सम्बद्ध सिद्धान्तों एवं ग्रन्थों का आकलन कर, जो प्राचीनकाल में किन्हीं कारणों से ग्रन्थ छिन्न-भिन्न होकर समय का ग्रास वनकर विलुप्त जैसा हो गया था, उनका संग्रह कर इस श्रीवैष्णव सन्यासमीमांसा के रूपमें विस्तार करता हूँ ॥२॥

संन्यास एवं त्याग की क्या परिभाषा है इस स्वरूप तत्व को जानने की इच्छा से समस्त उपनिषदों का सारतत्व स्वरूप भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में परम सत्य तत्त्व को जानने का इच्छुक परम भक्त अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णजी को पूछे

गीतायामष्टादशाध्याये अर्जुनो भगवन्तं श्रीकृष्णं पप्रच्छ, पूर्वाध्यायेषु "सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखंवशी । संन्यासयोगयुक्तात्मा...। त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः । सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरुयतात्मवान्" इत्यादिभिः क्वचित् कर्मसंन्यासः । अन्यत्र फलमात्रत्यागेन कर्मानुष्ठानमुपदिष्टम् । परमकारुणिको भगवान् श्रीकृष्णः सर्वज्ञः सन्नित्थं परस्परविरुद्धं कथमुपदिशेदिति कर्मसन्यासस्याविरोधहेतुजिज्ञासुरर्जुनः प्राह-

संन्यासस्य महावाहो तत्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश ? पृथक् केशिनिषुदनः ? ॥

ततः संन्यासस्य त्यागस्य च स्वरूपं विविच्य बोधयितुं श्रीभगवानाह-

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलंत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥३॥

(प्रश्न किये) । अठारहवाँ अध्याय से पूर्व के अध्यायों में "नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मों को मनसे परित्याग कर जितेन्द्रिय ज्ञिज्ञासु सुख पूर्वक स्थित रहते हैं । संन्यास योग से सम्पन्न हैं आत्मा जिसकी । कर्म फल के प्रति आशक्ति को परित्यागकर सर्वकाल में परम संतुष्ट आश्रय से विहीन होकर सभी प्रकार के कर्मों के फलों को परित्यागकर तत्पश्चात् नियतेन्द्रिय होकर कर्तव्य कर्म करो" इत्यादि वचनों के द्वारा कहीं पर कर्म संन्यास तो कहीं अन्य स्थान पर कर्म फल का परित्याग के साथ कर्म का अनुष्ठान करने का उपदेश किया गया है । समस्त प्राणी मात्र पर परम करुणा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी समस्त पदार्थों को तात्विक रूपसे जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी सर्वज्ञ होते हुये भी इसप्रकार परस्पर विपरीत वस्तुओं को किस तरह उपदेश करेंगे यह विचार कर कर्म सन्यास का अविरोध के कारण को जानने का इच्छुक अर्जुन भगवान् से निवेदन करते हैं हे महावाहु ? भगवान् सन्यास तत्त्व जानने की इच्छा करता हूँ । हे हृषीकेश ? त्याग का रहस्य तत्त्व को जानना चाहता हूँ हे केशी नामक दैत्य का संहार करनेवाले श्रीकृष्णजी इन दोनों तत्त्वों को भेद पूर्वक जानना चाहता हूं अतः आप भेद पूर्वक मुझे समझावें ।

तत्पश्चात् संन्यास और त्याग का स्वरूप तत्त्व विवेचन कर समझाने के लिये भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं- फलाभिलाषा पूर्वक किये जाने योग्य कर्मों का परित्याग

नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन कर्मणः त्रैविध्यम् । यस्याकरणे प्रत्यवायः तत् नित्यं कर्म । यथा अहरहः सन्ध्यामुपासीत । यस्य करणे पुण्यलाभ करणाभावे च प्रत्यवायस्तन्नैमित्तिकं कर्म यथा-राहूपरागे स्नायात् । जातस्य पुत्रस्य दशमे द्वादशे वाऽहनि नाम कुर्यात् पिता यस्याकरणे न प्रत्यवायः करणे च फललाभस्तत् काम्यम् कर्म, यथा स्वर्गकामोऽग्निष्टोमेन यजेत । वृष्टिकामः कारीरीमिष्टिं निर्वपेत् । इत्थं नित्यनैमित्तिककर्मणः कर्तव्यता करना संन्यास कहा जाता है ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं। सभी प्रकार के कर्मों के फलका परित्याग करना ही विद्वान् लोग त्याग कहते हैं। इसप्रकार काम्य कर्म का त्याग संन्यास कहा जाता है। यानी सभी कर्मों का फलत्याग त्याग कहा जाता है कर्म का त्याग त्याग नहीं ॥३॥

शास्त्रों में नित्य कर्म नैमित्तिक कर्म और काम्य कर्म भेद से कर्म का तीन प्रकार कहा गया है। जिस कर्म के न करने से पाप होता है, करने से कोई विशेष फल नहीं मिलता है उसे नित्य कर्म कहते हैं। जैसे दिन प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिये। जिस कर्म के करने से पुण्य होता है। एवं नहीं करने से प्रत्यवाय होता है। उसे नैमित्तिक कर्म कहते हैं। जैसे सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण होने पर स्नान करना चाहिये। उत्पन्न हुए पुत्र के दशवें अथवा वारहवें दिन पुत्र का नामकरण करना चाहिये। जिसके नहीं करने पर कोई पाप नहीं होता है, तथा करने पर उन उन फलों की प्राप्ति होती है उसे काम्य कर्म कहते हैं। जैसे स्वर्ग प्राप्ति की कामना से अग्निष्टोम याग करे तथा वर्षा की कामना से कारीरी इष्टि करें इस तरह नित्य नैमित्तिक कर्मों की आवश्यक कर्तव्यता प्रतिपादित होती है। और काम्य कर्म केवल फल के उद्देश्य से ही विधान किया जाता है। इसलिये संन्यासियों के हेतु काम्य कर्म का सर्वतोभावेन परित्याग का विधान किया गया है। अतः संन्यासियों के द्वारा काम्य कर्म का सर्वतोभावेन परित्याग करना चाहिये। इसप्रकार के संन्यास का कौन व्यक्ति अधिकारी है। उस संन्यास ग्रहण करने का क्या विधान है। संन्यास एवं संन्यासी का सम्बन्ध क्या है। उसके प्रकार कितने हैं। संन्यास ग्रहण करने का प्रयोजन क्या है। वह संन्यास विधान वैदिक है अथवा अवैदिक है। क्योंकि भारतीय सनातन धर्म में धर्म शास्त्रीय नियम है "वेदप्रणिहितो धर्मः-अधर्मस्तद् विपर्ययः" वेद के द्वारा

प्रतिपादिता, काम्यस्य च फलार्थमेव विधानम् । तस्मात् सन्यासिभिः काम्यकर्मणः परित्यागः सर्वथा विधेयः। तस्यैवं विधस्य संन्यासस्य कः अधिकारी को विधिः, कः सम्बन्धः । किं प्रयोजनम् । संन्यासविधेः वैदिकत्वमवैदिकत्वं वेति विविधा प्रश्नाः समुत्पद्यन्ते ॥४॥

'कर्मणां त्यागस्तु सन्यासः' इति न मनोरमम् । यतोहि-

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशं कर्म सर्वैः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ।
एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ।

इति ईशावास्यादिवचनात् कर्मलोपासम्भवात् । "विद्या सम्पत्तये फलाशक्तिकर्तृत्वाभिमानराहित्येन नित्यनैमित्तिककर्माणि मुमुक्षुणा यावज्जीवमनुष्ठेयान्येव विद्याङ्गकर्मणस्त्यागस्य विद्यासिद्धिविरोधित्वात्" इत्यानन्दभाष्यकारचरणोक्तेः ।

जिसका विधान किया गया है उसे धर्म कहते हैं । वेद विपरीत अधर्म कहा जाता है । अतः वेद विहित अथवा वेदानुमोदित धर्म ही वस्तुतः धर्म है । अतएव संन्यास विधान का वैदिकत्व होना अनिवार्य है । इसतरह संन्यास के विषय में विविध प्रकार के प्रश्न समुदित होते हैं । अतः क्रमेण प्रस्तुत विषयों का यथा सम्भव विवेचन करते हैं ॥४॥

समस्त कर्मों का त्याग करना ही सन्यास कहा जाता है यह कहना समुचित नहीं है । कोई भी प्राणि क्षण मात्र भी कभी भी विना कर्म किये नहीं रह सकता है । प्रकृति जात गुणों के द्वारा चाहे अनचाहे सभी से कर्म कराया ही जाता है । वेदशास्त्र द्वारा निर्धारित कर्मों का परित्याग करना तो समुचित अथवा युक्तिसंगत नहीं है । मोहवश नियत कर्मों का परित्याग शास्त्रों में तामसिक त्याग कहा जाता है । अतः शास्त्र विहित कर्म करना ही चाहिये । ईशावास्य उपनिषद में भी कहा है कि-इस संसार में मानव मात्र के लिये समुचित है कि काम्य कर्म वर्जित कर्मों का सम्पादन

'वेद सन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत' इति मनुः ।

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते ॥

इतिगीतोक्त्तेश्च सर्वैः प्राणिभिः कर्माणि करणीयान्येव । तत्र शास्त्र विहितानि कर्मणि सर्वैरेव करणीयानि। निषिद्धानि कर्माणि तु मुमुक्षुभिरन्यैर्वा न करणीयानि । तेषां प्रत्यवायजनकत्वात् । तस्य निरुक्तस्य संन्यासिनः चत्वारोभेदाः प्रतिपादिताः । तद्यथा भिक्षुकोपनिषदि । अथ भिक्षूणां मोक्षार्थिनां कुटीचकबहूदकहंसपरहंसाश्चेति चत्वारः ॥५॥

करते हुये ही सौ वर्षों तक जीवन जीने की अभिलाषा करनी चाहिये । निष्काम कर्म करता हुआ मानव में कर्म का लेप नहीं होता है । अर्थात् नित्य नैमित्तिक कर्म करनेवाला व्यक्ति कर्मासक्त नहीं कहा जाता है । अतः कर्म का त्याग वेद-विपरीत आचरण है । अतः इन वचनों के आधार पर कर्म लोप सम्भव नहीं है भगवान् मनु का भी वचन है-वैदिक सन्यासियों के लिये तो कर्मयोग है यह जानना चाहिये । गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी का भी वचन है-देहधारी प्राणियों के लिये पूर्ण रूपसे कर्मों का परित्याग करना शक्य नहीं ही है । जो प्राणी कर्म फल की इच्छा का परित्याग पूर्वक कर्म करता है वह कर्म फलका परित्याग करने के कारण वस्तुतः त्यागी (संन्यासी) कहा जाता है । अतः शिखा यज्ञोपवीत आदि का परित्याग तथा तत्सम्बद्ध कर्मों का परित्याग वेद विरुद्ध है । इसलिये सभी मानवों को कर्म करना ही चाहिये । उनमें भी शास्त्र विहित कर्म सभी को करना ही चाहिये । शास्त्रों द्वारा निषिद्ध कर्मों को तो मोक्ष की अभिलाषा रंखनेवाले पुरुष अथवा अन्य मानवों को भी नहीं करना चाहिये । क्योंकि निषिद्ध कर्मों के प्रत्यवाय जनक होने के कारण। उस पूर्व प्रतिपादित संन्यास का चार प्रकार कहा गया है । वह जैसे कि भिक्षुकोपनिषत् में-उन मोक्ष की कामना रखनेवाले संन्यासियों का कुटीचक बहूदक हंस तथा परमहंस भेद से चार प्रकार है ॥५॥

卐 तदत्र-श्रीवशिष्ठसंहितास्थम् 卐

॥ आश्रमधर्मनिरूपणम् ॥

श्रीभरद्वाजउवाच

नमस्ते ब्रह्मविच्छ्रेष्ठ ? नमस्ते ब्रह्मसूनवे ।
वर्णधर्माः श्रुतास्तत्त्वः श्रीवैष्णवोपकारकाः ॥१॥

न चानाश्रमिणा भाव्यं नरेण हितमिच्छता ।
अनाश्रामी यतश्चात्र नरः कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥२॥

वैष्णवाश्रमधर्मातच्छ्रोतुमिच्छामि सम्प्रति ।
महर्षे?त्वं समर्थोऽसि कृपया व्रूहि तान् प्रभो ? ॥३॥

त्वत्तोऽधिको न कोप्यऽस्ति धर्मतत्त्वाभिधायकः ।
ततश्चाश्रमधर्मांश्च श्रोतुं यातस्त्वदन्तिकम् ॥४॥

महर्षि श्रीवशिष्ठजी से ब्राह्मण त्रक्षिय वैश्य एवं शूद्र इन चारों वर्णों के धर्मादि सभी व्यवस्थाओं को सुनने के वाद आश्रम धर्म जानने की इच्छा से ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी से पुनः श्रीभरद्वाजजी प्रार्थना करते हैं-ब्रह्म तत्व जाननेवालों में श्रेष्ठ हे वशिष्ठजी आपको मैं वन्दना करता हूँ। हे ब्रह्माजी के पुत्र ? आपको वार वार नमन करता हूँ। महर्षि प्रवर ? आपसे मैं श्रीवैष्णवों के परम उपकारक वर्ण धर्मों को सुन लिया हूं। अव अनुग्रह कर आश्रम धर्मों का उपदेश करें ॥१॥ क्योंकि-

अपना हित चाहनेवाले मनुष्यों को अनाश्रयी होकर नहीं रहना चाहिये, यदि कोई भी आश्रम धर्म स्वीकार किये विना रहे तो वह पापी होता है। अतः कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत करने पर ही उस पाप से वह शुद्ध हो जाता है ॥२॥ इसलिये-हे महर्षि इस समय में मैं आपसे श्रीवैष्णवों के आश्रम धर्म के विषय में उपदेश सुनने की इच्छा रखता हूं। इन धर्मों के उपदेश में आप समर्थ हैं अतः प्रभो? मेरे उपर कृपाकर उन आश्रमधर्मों का उपदेश करें ॥३॥

मुनीश्वर ? आपके शिवाय धर्म तत्वका उपदेश करनेवाला कोई भी नहीं है। इसलिये आश्रमधर्मों की सुनने की इच्छा से आपके पास आया हूं। अतः श्रीवैष्णवाश्रम भेद उपभेद आदिका उपदेश दें ॥४॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

भरद्वाज ! महाभाग ! क्षितौ धन्यस्त्वमेव हि ।
ईदृशी धर्मजिज्ञासा जाताते हृदये यतः ॥५॥
जिज्ञास्यं तेऽभिधास्यामः सावधानमनाः श्रृणु ।
शास्त्रमेव मतं प्राज्ञैर्धर्मतत्त्वप्रकाशकम् ॥६॥
चत्वार आश्रमास्तत्र वैष्णवानां महात्मनाम् ।
संन्यासो वानप्रस्थश्च गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यकम् ॥७॥
भुञ्जानः सात्विकं भक्ष्यं विद्यार्थी गुरुसेवकः ।
ब्रह्मचारी द्विजस्तिष्ठेद् द्वादशाब्दं गुरोर्गृहे ॥८॥
अष्टमैथुनवर्ज्यात्म ब्रह्मचर्यव्रतेरतः ।
स्नात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा देवाभ्यर्चनकारकः ॥९॥

श्रीभरद्वाजजी की आश्रमधर्म विषयक प्रार्थना सुनकर श्रीवशिष्ठजी कहते हैं-महाभाग्यशाली भरद्वाजजी ? इस पृथिवी में आप ही धन्य हैं क्योंकि आपके हृदय में ही अति उत्तम ऐसे आश्रमधर्मों को जानने की इच्छा जगी॥५॥

हे भरद्वाजजी ? आपसे जिज्ञासित आश्रमधर्म का वर्णन करता हूं सावधान मन यानी एकाग्रचित्त से सुनें। किसी भी आश्रमधर्म के प्रकाशक-बोधक एक मात्र शास्त्र है-ऐसा प्राज्ञ मननशील महर्षियों ने निश्चित किया है ॥६॥

मननशील श्रीवैष्णव महात्माओं के लिये शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ एवं संन्यास इसप्रकार चार आश्रम नियत किये हैं ॥७॥

जो द्विज सात्विक भोजन करता हुआ गुरु की सेवा पूर्वक विद्याध्ययन करते हुये वारह वर्ष तक गुरुकूल में निवास करता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है ॥८॥

वह ब्रह्मचर्य व्रत में रत होकर आठ प्रकार के मैथुनों से रहित होकर यानी "स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च। एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्" ॥ अर्थात् स्मरण करना कीर्तन गान करना रमत कराना तथा देखना एकान्त में वातें करना मनमें संकल्प करना उद्योग करना और साक्षात् क्रिया का संपादन करना ये मैथुन के आठ अंग हैं। ऐसा महर्षियों ने कहा है। इसी के ठीक विपरीत को आठ प्रकार

नम्रः शिखोपवीति च मेखलादण्डधारकः ।
होता स्वाध्यायकर्तासन् वसेद्धि गुरुसन्निधौ ॥१०॥
गायत्रादिविभेदैश्च चतुर्धा ब्रह्मचारिणः ।
स्थाता रात्रित्रयं यावल्लवणाभक्षकश्च यः ॥११॥
गायत्रीजपकर्ता स गायत्रः समुदीरितः ।
आवेदाध्ययनं ब्राह्मो ब्रह्मचर्यस्य पालकः ॥१२॥
वर्षं यावत् तथाभूतः प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ।
आजीवनं तथाभूतो नैष्ठिको हि गुरोः कूले ॥१३॥
आयुषश्चाचतुर्थांशं ब्रह्मचारी भवेद् द्विजः ।
आयुषश्चाद्वितीयार्धं कृतदारो गृहीभवेत् ॥१४॥
वार्त्ताकादिविभेदैश्च गृहस्थाः षड्विधाः स्मृताः ।
सन्ध्या पञ्चमहायज्ञातिथ्यादिकर्मकारकाः ॥१५॥

का ब्रह्मचर्यपना है। उसमें निरत रहकर स्नान शौच सन्ध्यादि कर्मों का सम्पादनकर देवता की पूजापाठ स्तुति करनेवाला ब्रह्मचारी होता है ॥९॥

शिखा तथा यज्ञोपवीत धारण करने के साथ मेखला एवं दण्डका धारक नम्र और नियत रूपसे हवन एवं स्वाध्याय वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करते डुये गुरुकूल में निवासी हो वह ब्रह्मचारी कहाता है ॥१०॥

गायत्र ब्राह्म प्राजापत्य तथा नैष्ठिक भेद से चार प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं। तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य का पालनकर लवण का त्यागकर गायत्री जप करते हुए जो रहता है वह गायत्र कहलाता है। वेदाध्ययन के समाप्ति पर्यन्त जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह ब्राह्म-ब्रह्मचारी कहलाता है ॥११-१२॥

एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालक प्राजापत्य ब्रह्मचारी कहा गया है। आजीवन ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुकूल में निवास करनेवाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है ॥१३॥

द्विज को आयुष्य के चौथे भाग तक ब्रह्मचारी के रूपमें रहना चाहिए। अनन्तर द्वितीय भाग प्रारम्भ होने पर शास्त्र अनुकूल विवाह करके गृहस्थ हो जाए ॥१४॥

वार्ताक शालीन यायावर घोर सन्यासी उञ्छवृत्ति एवं अयाचित के भेदों से छः

वार्ताकः कथ्यते तत्र धार्मिकः संविचक्षणैः ।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यैर्जीवति यो गृहीनरः ॥१६॥
दानप्रतिग्रहाभ्यां च यजनात् याजनात् तथा ।
पठनात् पाठनाच्चाथ शालीनो जीवति द्विजः ॥१७॥
याचित्वा सद्गृहस्थेभ्यो जीवन् यायावरो मतः ।
घोरसंन्यासिको भिक्षातश्चैकं निर्वहेद् दिनम् ॥१८॥
उञ्छवृत्तिर्जनः प्रोक्तः क्षेत्रोञ्छितान्नभक्षणात् ।
अयाचितो द्विजो यो हि दैवात् प्राप्तेन जीवति ॥१९॥
आयुषश्च द्वितीयाऽर्धेऽवशिष्टे वानप्रस्थता ।
वैखानसादिभेदैश्च वानप्रस्थाश्चतुर्विधाः ॥२०॥

प्रकार के गृहस्थ कहे गये हैं ये सभी सन्ध्यावन्दन हवन तर्पण देव-पूजा गोग्रास स्वाध्याय आदि पञ्च महायज्ञों और अतिथियों का सत्कार करनेवाले होते हैं ॥१५॥

उन छः प्रकार के गृहस्थों में से जो धार्मिक गृहस्थनर कृषि खेती गोपालन वाणिज्य-व्यापार आदि से जीवन निर्वाह करता है उसे शास्त्र मर्यादा ज्ञाताओं से वार्त्ताक कहा गया है ॥१६॥

जो द्विज दान देना दान लेना यज्ञ करना तथा यज्ञ कराना और पढना तथा पढाना आदि कर्मों से जीवन निर्वाह करता है वह शालीन कहलाता है ॥१७॥

सद्गृहस्थों के यहाँ से अपने उपयोग के अनुसार भीक्षा लेकर जीवन निर्वाह करनेवाला द्विज यायावर माना जाता है। जो केवल दिन में एक समय ही भिक्षा के सदन्न के सेवन से जीवन निर्वाह करता है वह घोर संन्यासि कहलाता है ॥१८॥

कृषकों के अनाज के काटकर लेजाने के वाद खेतों में रहे हुये कणों को एकत्रित कर उसी से अपने जीवन निर्वाह करनेवाले द्विज को उञ्छवृत्ति वाला कहते हैं। जो दैवगत्या अनायास प्राप्त वस्तुओं से निर्वाह करता है वह द्विज अयाचित वृत्तिक कहलाता है ॥१९॥

मनुष्य के आयु के द्वितीयार्ध यानी एकावन वर्ष से पचहत्तर वर्ष तकका शेष भाग वानप्रस्थ कहलाता है। वह वानप्रस्थ वैखानस औदुम्वर वालखिल्य एवं फेनपा भेदों से चार प्रकार का कहा गया है ॥२०॥

वैखानसास्तु नीवाराद्यैरग्निहोत्रकारकाः ।
औदुम्वरास्तु जीवन्ति फलैश्चोदुम्बरादिभिः ॥२१॥
बालखिल्यामतास्ते ये जटावल्कलधारिणः ।
अर्जितमष्टभिर्मासैरन्नमश्नन्ति पावसे ॥२२॥
जीवन्ति फेनपाश्चाथ शुष्कैः पर्णैः फलैस्तथा ।
तुरीयश्चाश्रमः प्रोक्तः प्राज्ञैः संन्यासनामकः ॥२३॥
चतुर्थांऽशेऽवशिष्टेतु प्रव्रज्याऽभिहिताऽऽयुषः ।
यदा वोत्कटवैराग्यं प्रव्रज्येयं श्रुतौ तदा ॥२४॥
सन्यासिनो द्विधाज्ञेया वैष्णवा इतरे तथा ।
वैष्णवाश्च द्विधा तत्रादण्डिनश्च त्रिदण्डिनः ॥२५॥

नीवारादि हविष्यान्नों से अग्निहोत्र करनेवाले वानप्रस्थ वैखानस कहे जाते हैं। एवं जो उदुम्वर फलादि से ही जीवन निर्वाह करते हैं वे औदुम्वर कहे जाते हैं ॥२१॥

आठ महिनों में अर्जित सात्विक अनाजों को पावस वर्षा के चार महिनों में यथाविधि भगवदाराधना पूर्वक सेवन करनेवाले जटा वल्कल एवं वस्त्रों को धारण करनेवाले तपस्या परायण जो है वे वालखिल्य कहलाते हैं ॥२२॥

जो शुष्क-सूखे पत्ते तथा कन्द फल-मूल आदि से जीवन निर्वाह करते हैं वे फेनप वानप्रस्थ कहे जाते हैं। चौथा आश्रम संन्यास इस नामसे प्राज्ञ लोगों ने निरूपण किया है ॥२३॥

आयु के चतुर्थांश भाग शेष रहने पर प्रव्रज्या संन्यास ग्रहण करलेना चाहिए ऐसा शास्त्रीय विधान है। "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्" इस श्रुति के विधानानुसार जिस दिन उत्कट वैराग्य हो जाय उसी दिन संन्यास ग्रहण करलेने में कोई दोष नहीं यानी ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थ बनें अनन्तर वानप्रस्थ वनकर ही संन्यासाश्रम में प्रवेश करें यह कोई अत्यावश्यक नियम नहीं उत्कट प्रवल वैराग्य होने पर ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे संन्यासाश्रम या गृहस्थाश्रम से भी वानप्रस्थ हुये विना ही संन्यासाश्रम में प्रवेश करसकते हैं इसमें शास्त्र मर्यादा का भंग नहीं है ॥२४॥

संन्यासी दो प्रकार के होते हैं एक वैष्णव संन्यासी तथा दूसरा शैव संन्यासी वैष्णव संन्यासी भी दो प्रकार के होते हैं। एक अदण्डी यानी विना दण्ड के दूसरे त्रिदण्डी ॥२५॥

कौपीनधारकाः कण्ठे तुलसीधारिणस्तथा ।
शिखायज्ञोपवीतोर्ध्वपुण्ड्राणां धारकाः समे ॥२६॥
उपास्तिपञ्चकाभिज्ञाश्चार्थपञ्चककोविदाः ।
रहस्यत्रयवेत्तारश्चाकारत्रयसंयुताः ॥२७॥
विरक्ताः सात्विकाधीरावेदान्तवेदिनस्तथा ।
गुरौ ब्रह्मणि मन्त्रे च धर्मे श्रद्धालवोऽपि च ॥२८॥
ब्रह्मचर्यपराश्चाथ सत्याहिंसा परायणाः ।
परोपकारकर्तारः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः ॥२९॥

. विना दण्ड के हो या त्रिदण्डी सभी वैष्णव संन्यासी कण्ठ में तुलसी माला-कण्ठी कौपीन को धारण करनेवाले होते हैं एवं दोनों ही प्रकार के संन्यासी शिखा यज्ञोपवीत तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करनेवाले होते हैं यानी वैष्णव संन्यासी में शिखा यज्ञोपवीत का त्याग नहीं होता है । उन्हें कौपीन तुलसी की कण्ठी शिखा सूत्र एवं ऊर्ध्वपुण्ड्रों का नियमित रूपसे धारण करना शास्त्र विधानतः अति आवश्यक है । इन सवों के त्याग से आरूढ पतित हो जाता है जिसका प्रायश्चित् नहीं है ॥२६॥

दोनों प्रकार के वैष्णव संन्यासी पाँच प्रकार यानी अभिगमन, उपादान अर्चन स्वाध्याय एवं ध्यान रूप उपासना को जानने वाले तथा अर्थपञ्चक-प्राप्य, प्रापक उपाय फल एवं विरोधी तत्वों को अच्छी प्रकार से जानने वाले और रहस्यत्रय यानी मन्त्रराज षडक्षर श्रीराममन्त्र, महामन्त्ररत्न (द्वय मन्त्र) तथा चरम मन्त्र इन तीन रहस्यों को जाननेवाले एवं आकार त्रय यानी अनन्य शरणत्व, अनन्य भोग्यत्व तथा अनन्य शेषत्व के स्वरूप को यथार्थ रूपसे जाननेवाले होते हैं ॥२७॥

उक्त दोनों संन्यासी विरक्त होते हैं । सात्विक धीर एवं वेदान्त तत्वों को जाननेवाले होते हैं । और गुरु-मन्त्र दाता गुरुदेव तथा सभी पूर्वाचार्य ब्रह्म-परब्रह्म श्रीरामजी तथा मन्त्र-श्रीराम सम्बन्धी मन्त्र एवं धर्म-सनातन श्रीवैष्णव धर्म में परम श्रद्धा रखनेवाले होते हैं ॥२८॥

ये लोग ब्रह्मचर्य व्रत पालन में तत्पर एवं सत्य और अहिंसा परायण होते हैं । तथा परोपकार करने में सदा तत्पर रहते हैं एवं पञ्चसंस्कारों श्रीरामयुध-धनुर्वाण, तप्तमुद्रा, या शीतल मुद्रा से चिह्नित होना, ऊर्ध्वपुण्ड्र, भगवद्दास्य परक नाम, तुलसी माला-कण्ठी तथा श्रीराम महामन्त्रराज की दीक्षा से संस्कृत होते हैं ॥२९॥

श्रीसीतारामभक्ताश्च श्रीसीतारामकीर्त्तकाः ।
सीतारामप्रपन्नाश्च श्रीसीतारामचिन्तकाः ॥३०॥
श्रीसीतारामदासाश्च सीतारामपरायणाः ।
सीतारामस्वरूपज्ञाः श्रीसीतारामपूजकाः ॥३१॥
पञ्चकेशधराश्चाद्याः शिखिनो वा जटाधराः ।
काषायाम्बरश्वेतादिहरिन्नीलं विनाम्बराः ॥३२॥

ये दोनों प्रकार के संन्यासी श्रीसीतारामजी के भक्त एवं श्रीसीताराम नाम का सदा कीर्तन तथा जप करनेवाले और श्रीसीतारामजी के ही प्रपन्न शरणागत होते हैं एवं श्रीसीतारामजी के ही चिन्तक होते हैं ॥३०॥

ये दोनों प्रकार के वैष्णव सन्यासी श्रीसीताराम परायण तथा श्रीसीतारामजी के ही दास-शेष-भोग्य होते हैं। एवं श्रीसीतारामजी के स्वरूप तत्त्व को जाननेवाले और श्रीसीतारामजी की युगल दिव्य श्रीविग्रह की ही पूजा आराधना करनेवाले होते हैं अन्यों के नहीं ॥३१॥

अदण्डी तथा त्रिदण्डी दो प्रकार के वैष्णव संन्यासी में से पहले अदण्डी संन्यासी भद्र रूप शिखावाले या पञ्चकेश धारण करनेवाले अथवा जटा धारण करनेवाले होते हैं। तथा शास्त्र विहित काषाय वस्त्र को धारण करनेवाले होते हैं। इनमें से कितने ही हरे और नीले कपडों को छोड श्वेत पीत वस्त्रों के धारक भी होते हैं। अर्थात् संन्यासाश्रम सेवी श्रीवैष्णव के लिये काषाय वस्त्र का ही विधान है। अन्य श्वेतादि का नहीं, श्वेतादि वस्त्र धारण प्रमाद एवं शास्त्र मर्यादा विरुद्ध है। हरे, नीले, श्वेत तथा पीत आदि वस्त्र धारण करना प्रमाद तथा निषिद्ध है। शास्त्रकारों ने विरक्त श्रीवैष्णवों के वस्त्र एवं आचार के विषय में स्पष्ट निर्देश किया है श्रीवाल्मीकि संहिता कहती है-

काषायं ब्रह्मसूत्रं च त्रिदण्डं धारयन्यतिः ।
पुनानः स्वोपदेशेन लोकांश्च विचरेद् भुवि ॥
काषायवासाः सततं ध्यान योगपरायणः ।
ग्रामान्ते वृक्षभूले वा वसेद् देवालयेऽपि वा ॥
मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौक्यमेव च ।
दिवास्वापं च यानं च यतीनां पातकानिषट् ॥

कथाकीर्तनस्वाध्यायहोमार्चादिविधायकाः ।
आलस्यरहिता धातुकाष्ठादिपात्रधारकाः ॥३३॥
स्नानसन्ध्यादिकर्तारो मन्त्रराजस्य जापकाः ।
केचित्तु भस्मनासार्धमूर्ध्वपुण्ड्रजटाधराः ॥३४॥
राममन्त्रतपोभ्यां च रामाराधनतत्पराः ।
सहदण्डत्रयेणान्त्या काषायाम्वरधारकाः ॥३५॥

अर्थात् विरक्त वैष्णव काषाय (भगवा) वस्त्र यज्ञोपवीत त्रिदण्ड धारणकर ध्यान योग परायण होकर ग्राम से बाहर वृक्ष के नीचे या देवालय में निवास करें एवं सदा सदुपदेश परायण रहे। विरक्त श्रीवैष्णवों को चारपाई पर सोना शुक्ल वस्त्र धारण करना स्त्री की कथा चंचलता दिनमें सोना बैलगाडी पर सवारी नहीं करना ये सव पातक जनक हैं। तथैव पद्मपुराण के आदि खण्ड में लिखा है-

"मुण्डीशिखीवाथ भवेत् त्रिदण्डीनिष्परिग्रहः ।
काषायवासाः सततं ध्यानयोगपरायणः ॥
यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः ।
धौतकाषायवसनो भस्माच्छन्नतनूरूहः ॥"

अर्थात् विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी काषाय वस्त्र त्रिदण्ड धारण करे भद्र या पञ्चकेश रखे सदा ध्यान एवं सदुपदेश परायण हो, उसे यज्ञोपवीत कण्ठी तिलक आदि सदा धारण करना चाहिये। एवं निकृष्ट भस्म का उपयोग न करता हुआ समाहित मनसा भगवत्परायण होकर समय यापन करे। यह संक्षिप्त स्वरूप हैं विस्तृत अन्यत्र देखें ॥३२॥

अदण्डी वैष्णव संन्यासी सर्वथा आलस्य से रहित होकर श्रीरामकथा कीर्तन, स्वाध्याय, हवन, पूजा, स्तुति, पाठ आदि करनेवाले एवं धातु लकडी या बाँस के पात्रों का धारण करनेवाले होते हैं ॥३३॥

ये स्नान-शौच-सन्ध्या-वन्दन एवं मन्त्रराज के जप करनेवाले होते हैं उनमें से कितने ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और जटा के साथ यज्ञ समुद्भव विशुद्ध भस्म धारण करनेवाले भी होते हैं ॥३४॥

विना त्रिदण्ड के श्रीवैष्णव संन्यासी श्रीराममन्त्र का जप अनुष्ठान और तपश्चर्या के द्वारा श्रीरामजी की आराधना में सदा तत्पर रहते हैं।

सीतारामौ स्मरन्तश्च काष्ठादिपात्रशालिनः ।
भ्रमन्तः पुण्यतीर्थेषु सर्वथा दम्भवर्जिताः ॥३६॥

ईशं धर्मं न निन्दन्ति स्त्रिया सार्धं वसन्ति न ।
न वित्तलोलुपा भूत्वा गच्छन्ति धनिनोऽन्तिकम् ॥३७॥

यतयः सेवनानार्हा गृहस्थवेषधारकाः ।
सेव्या विरक्तशीलास्ते विरक्तवेषशालिनः ॥३८॥

संन्यासिनो गृहस्थत्वेन त्वारूढतपनं भवेत् ।
आरूढपतितस्याऽत्र प्राश्चित्तं न विद्यते ॥३९॥

पूर्व वर्णित भेदानुसार अन्त्य यानी दूसरे दण्डी वैष्णव संन्यासी जो हैं वे त्रिदण्ड के साथ काषाय वस्त्र को धारण करते हैं अर्थात् त्रिदण्डी को श्वेतादि वस्त्र धारण सर्वथा निषेध है ॥३५॥

त्रिदण्डी श्रीवैष्णव संन्यासी अलावुपात्र, काष्ठपात्र, बाँस का पात्र एवं मृन्मय पात्र को धारण करनेवाले होते हैं। यानी धातु पात्रका उपयोग निषिद्ध है। अलावुपात्र का तात्पर्य लता समुद्भूत पात्र से हैं अतः दरीयायीलता का फल नारियली चिप्पी एवं पृथिवी लता का फल तुमडी दोनों ही समान रूप से ग्राह्य हैं मनु का भी ऐसा ही विधान है-

अलाबुदारूपात्रं च मृन्मयं वैणवं तथा ।
एतानि यति पात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥६-५४॥

श्रीसीतारामजी का अखण्ड स्मरण करते हुये सर्वथा दम्भ से रहित होकर सभी पुण्यतिर्थों में एवं गावों गावों में घूमते हुये सद्धर्म का प्रचार करते हैं ॥३६॥

श्रीवैष्णव संन्यासी ईश्वर एवं उससे प्रवर्तित धर्म की निन्दा कभी भी नहीं करते हैं तथा स्त्रियों के साथ निवास भी नहीं करते हैं और वित्त में लालायित होकर धनी व्यक्ति के पास याचना करना भी कदापि नहीं जाते हैं ॥३७॥

गृहस्थ वेष का धारण करनेवाले यति संन्यासी सेवा-पूजा सत्कार करने योग्य नहीं हैं क्योंकि वे अपने आचार से च्युत हैं। विरक्त वेष में रहनेवाले विरक्तोचित व्यवहार वाले सेव्य-पूज्य-पूजनीय हैं ॥३८॥

संन्यासियों का गृहस्थ वेष धारण या विवाह करलेने से पतन हो जाता है।

इह भ्रष्टाधिकारोहि गर्हितो मानवर्जितः ।
मृतोहि नरकं गच्छत्यारूढपतितो यतिः ॥४०॥
ब्रह्मचर्यव्रतं रक्ष्यं गृहस्थान्याश्रमत्रये ।
तदभावे हि तत्स्थानामारूढपतनं भवेत् ॥४१॥
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्य आरूढपतिताश्चये ।
स्वाधिकाराद् बहिष्कार्या नृपैश्च धार्मिकैश्च ते ॥४२॥६॥

एषां स्वरूपनिरूपणात् पूर्वं श्रीबोधायनस्मृतिमनुरुध्य आश्रमभेदाः तेषां स्वरूपाणि च निरुप्यन्ते "तस्य ह वा एतस्य धर्मस्य चतुर्धाभेदमेक

ऐसों को शास्त्रकारों ने आरूढ पतित कहा है। आरूढ पतितों को पवित्र करने के लिये शास्त्र में कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥३९॥

आरूढ पतित संन्यासी इसलोक में सभी अधिकारों से रहित हो जाता है। एवं निन्दित और मान प्रतिष्ठा से रहित हो जाता है, इतना ही नहीं मरने के वाद अवश्य ही नरक में चला जाता है ॥४०॥

गृहस्थाश्रम से अन्य तीनों आश्रमों में सावधानी पूर्वक नियत रूपसे ब्रह्मचर्य व्रत का रक्षण-पालन करना चाहिये-व्रत का पालन न हो तो उस-उस आश्रम से वह पतित हो जाता है। अतः वे आरूढ पतित कहलायेंगे जिनका कि शास्त्र मर्यादानुसार संसार में कोई मर्यादा नहीं है ॥४१॥

जो आश्रमधर्म से भ्रष्ट होकर आरूढ पतित हो गये हैं उन्हें धार्मिक व्यक्तियों के परिषदों के संयुक्तता में नृपों द्वारा उनके अधिकार से वहिष्कार करदेना चाहिये ॥४२॥६॥

इन संन्यासियों के स्वरूप निरूपण से पूर्व बोधायनस्मृति के अनुसार आश्रमों का भेद तथा उनका स्वरूप निरूपण किया जाता है। जैसे कि उस आश्रम का कुछ विद्वान् चार भेद कहे हैं। ये चारों ही कर्मवाद हैं। ऐष्टिक, पाशुक, सौमिक तथा दार्विक होमों का ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा परिव्राजक ये चार आश्रम हैं। ब्रह्मचारी मृत्युपर्यन्त गुरु की सेवा करे। वानप्रस्थ वैखानस व्रत का शास्त्र के अनुसार आचरण करे। वैखानस व्रत, उसे कहते हैं जिस व्रत में वनमें फलमूल भोजन करते हुये तपस्यारत रहकर श्रामणक अग्नि की स्थापना कर ग्राम्य भोजन विमुख रहकर देवता पितर, प्राणी, मनुष्य एवं ऋषि का पूजा सभी जिसके अतिथि हों वेद प्रतिषिद्ध

आहुः । ये चत्वार इति कर्मवादः । ऐष्टिकपाशुकसौमिकदार्विकहोमानाम् । ब्रह्मचारी गृहस्थोवानप्रस्थः परिव्राजक इति । ब्रह्मचारी गुरुशुश्रुषुरामरणात् । वानप्रस्थो वैखानसशास्त्रसमुदाचारः । वैखानसो वने मूलफलाशी तपः शीलः श्रामणकेनाग्निमाधायाग्राम्यभोजी देवपितृभूतमनुष्यर्षि पूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्षमप्युपयुञ्जीत न कालकृष्टमुपयुञ्जेद् ग्रामं च न प्रविशेत् । जटिलश्चीराजिनवासानातिसम्वत्सरं भुञ्जीत । परिव्राजकः परित्यज्य बन्धूनपरिग्रहः प्रव्रजेद् यथाविधि । अरण्यं गत्वा शिखीमुण्डी कौपीनाच्छादनो बर्षास्वेकस्थः । काषायवासाः सन्नमुसले व्यङ्गारे निवृत्तशरावस म्पाते भिक्षेत । वाङ्मनः कर्मदण्डैर्भूतानामद्रोही पवित्रं बिभ्रत् शौचार्थं उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात् ।''

कर्मों को छोडकर तथा वेदनिषिद्ध भिक्षाओं को छोडकर भिक्षावृत्ति का उपयोग करे। खेत को हल से जुता हुआ होने पर उसके अन्नका उपयोग नहीं करे। और ग्राम में प्रवेश नहीं करे। जटा धारणकर चीर अथवा चर्म को पहनकर वर्ष में एक दिन से अधिक दिन तक भोजन नहीं करे।

परिव्राजक उसे कहते हैं जो समस्त बन्धुओं का परित्याग कर शास्त्रीय विधान के अनुसार संन्यास ग्रहण करे। वन में जाकर शिखाधारी, मुण्डित कौपीन मात्र आच्छादन वाला वर्षा ऋतु में ही एक जगह निवास करनेवाला, कषाय रंग से रंगा हुआ वस्त्र को पहननेवाला, जहां मुसल की आवाज बन्द हो गयी हो आग बुझ गयी हो एवं वर्तनों की खनखनाहट समाप्त हो गयी हो ऐसे घर में भिक्षा करे। वाणी मन एवं कर्म के दण्ड से प्राणी मात्र का द्रोह नहीं करे। पवित्रता कर्म को धारण करता हुआ शौच के लिये निकाले गये जल से कार्य करे।

संन्यास धारण करने का क्या प्रयोजन है ऐसी जानने की आकांक्षा होने पर कहा जाता है–उन सर्वेश्वर श्रीरामजी को जानकर ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये अथवा परमधाम साकेत जाने के लिये अन्य मार्ग नहीं है। विद्या के द्वारा ही साकेत लोक में आरोहण करते हैं जहाँ समस्त इच्छाओं का समाधान हा जाता है। जो व्यक्ति दक्ष नहीं हैं वे उस लोक में नहीं जाते हैं। अविद्वान् अथवा तपश्चरण रहित भी उस लोक में नहीं जाते हैं। इसप्रकार के ज्ञानोपासनात्मक

संन्यासग्रहणस्य किं प्रयोजनमित्याकांक्षायां समुत्पन्नायामुच्यते-तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयमाय इति । विद्ययैव तदारोहति यत्र कामाः समाहिताः, न तत्रादक्षका यान्ति, नविद्वांसो नातपस्विनः इति च । एवं विधस्य व ज्ञानोपासनात्मकस्य कार्यानुष्ठानस्याश्रमान्तरेऽशक्यप्रायत्वात् सन्यासाश्रमम्यौचित्यम् । ज्ञानयोगस्यासाधारणत्वम् लोके वेदे च प्रसिद्धमेव । सन्यासमेषां विधाय आत्मानं युञ्जीत इत्यत्र न्यासशब्दवाच्यो ज्ञानयोग एव । स च केवलस्यज्ञानमात्रस्यानुष्ठानम् । गृहस्थानां तु कर्मयोगः, तत्र तु ज्ञानकर्मसमुच्चयस्यानुष्ठानम् ततो मोक्षः, यद्यपि परिव्राजकस्याप्य हन्यहनि सन्ध्यावन्दनादीनि कर्माणि सन्त्येव, तानि तु आश्रमधर्मात्मकानि न तु मोक्षार्थानि "सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु" इति । "आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः" इत्यादिवचनैः सन्ध्यावन्दनादिहीनस्य तत्र अधिकाराभाव एव । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहारादीनां योगाङ्गत्वेन ज्ञानाङ्गत्वम् । वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः । ते

कर्मानुष्ठान का अन्य आश्रम में परिपालन असम्भव होने के कारण संन्यासाश्रम का औचित्य सिद्ध होता है । ज्ञानयोग की असामान्यता लोक व्यवहार एवं वेद में प्रसिद्धि ही है । इनका संन्यास विधान करके आत्मा को योगमुक्त करे । यहां संन्यास शब्द में न्यास शब्द का अर्थ ज्ञान योग ही है । और वह ज्ञानयोग केवल ज्ञान मात्र का अनुष्ठन है । गृहस्थों के लिये तो कर्मयोग है । गृहस्थाश्रम में तो ज्ञान कर्म समुच्चय का अनुष्ठान होता है तथा उससे ही मोक्ष होता है । यद्यपि परिव्राजक के लिये भी दिन प्रतिदिन सन्ध्या बन्दनादि नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करना आवश्यक ही है किन्तु वे तो आश्रमधर्मों के स्वरूप मात्र है । अधिकार सिद्धि के लिये है न कि मोक्ष के लिये है । कहा गया है जो व्यक्ति सन्ध्या हीन हो वह अपवित्र है तथा सभी कर्मों में सदैव अयोग्य है । आचार हीन को वेद भी पवित्र नहीं करता है, इत्यादि वचनों से सन्ध्या आदि से रहित व्यक्ति का संन्यासाश्रम में अधिकार का अभाव ही है । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्यहार आदि का योगाभ्यास का अङ्ग होने के कारण ज्ञान का अङ्गत्व है । कहा भी है "वेदान्त के विशिष्ट ज्ञान से जिन्हें अर्थ तत्त्व का निश्चय हो चुका है वे संन्यासीगण संन्यास के योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले होकर

ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्तु सर्वे ॥ "ज्ञानयोगेन संख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्" इत्यादिवचनैः पारिव्रज्याश्रमे एषां ज्ञानाङ्गत्वम् ॥७॥

अस्य संन्यासस्य भिक्षुकोपनिषदमनुरुध्य चत्वारः भेदास्सन्ति । तद्यथा-"अथ भिक्षूणां मोक्षार्थिनां कुटीचकबहूदकहंसपरमहंसाश्चेति चत्वारः" ।

लघुविष्णुस्मृतौ यथा-

चतुर्विधाभिक्षुकाः स्युः कुटीचकबहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥

☫ कुटीचकलक्षणम् ☫

"कुटीचकशिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटीकन्थाधरः

प्राणान्त काल में ब्रह्मलोक में जाकर अमृतत्त्व को प्राप्त करते हैं एवं समस्त बन्धनों से विमुक्त हो जाते हैं"-भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण श्रीमुख से कहते हैं-संन्यासियों को ज्ञानयोग से एवं योगियों को कर्मयोग से मुक्ति होती है, इत्यादि वचनों से सन्यासाश्रम में यम, नियमादि का ज्ञानाङ्गत्व प्रमाणित होता है ॥७॥

भिक्षुकोपनिषद् के अनुसार इस संन्यास का चार भेद कहे गये हैं । वह जैसे कि-मोक्ष की अभिलाषा करनेवाले भिक्षुकों (सन्यासियों) का कुटीचक, बहूदक हंस तथा परमहंस ये चार प्रकार हैं । लघुविष्णु स्मृति में कहा है-चार प्रकार के भिक्षुक होते हैं । १-कुटीचक २-बहूदक ३-हंस और ४-परमहंस, इनमें जो जो वाद में हैं वे पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे गये हैं ।

☫ १-कुटीचक सन्यासी का लक्षण ☫

कुटीचक संन्यासी शिखा एवं यज्ञोपवीत धारण करते हैं, वे दण्ड कमण्डलु कौपीन एवं कन्था (एक प्रकार का वस्त्र) धारण करते हैं । पिता माता एवं गुरु की आराधना में तत्पर होते हैं । पिठर (पात्र विशेष) खनती तथा थैला आदि से युक्त होकर यात्रा करते हैं तथा सतत मन्त्र साधना में अपने आपको समर्पित किये रहते हैं । उन्हें एक स्थान पर ही भोजन करने का विधान है। कुटीचक सन्यासी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं तथा ये त्रिदण्ड धारण करते हैं ।

कुटीचक सन्यासी समस्त सुखको त्यागकर पुत्र के समृद्धि सुखको भी छोड

पितृमातृगुर्वाराधनपरः, पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपरः एकत्रान्नादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्डः" इति संन्यासोपनिषद् ।

त्यक्त्वा सर्वसुखास्वादं पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ।
अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥
नान्यस्यगृहे भुञ्जीत भुञ्जानोदोषभाग्भवेत् ।
कामं क्रोधं च लोभञ्च तथेर्ष्या सत्यमेव च ॥
कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ।
भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥
कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट्त्यक्त बान्धवः ॥

निर्णयसिन्धुतृतीयपरिच्छेदेऽपि-

"कुटीचकः कुटीं कारयित्वा तत्र वसन् काषायवासाः शिखोपवीत त्रिदण्डवान् स्वगृहे भुञ्जान आत्मज्ञोभवेत्" ।

बहूदक लक्षणम्

"अथ बहूदका नाम त्रिदण्डकमण्डलुशिखायज्ञोपवीतकषायवस्त्रधा-

दे । अपने पुत्रों के साथ प्रतिदिन रहते हुये भी मोह-ममता से अपने को सतत पृथक् रखे । दूसरे के घर में भोजन करने से दोष की प्राप्ति होती है इस कारण किसी अन्य व्यक्ति के घर में भोजन नहीं करे । कुटीचक सन्यासी काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, मिथ्या आदि को छोड दे । उक्त सन्यासी सम्पूर्ण वस्तु पुत्र के लिये त्याग दे । कुटीचक सन्यासी को भिक्षाटनादि में जब अशक्त हो जाय तो उसे स्व शरीर को भी पुत्र को ही समर्पित करदेना चाहिये । इन सभी गुणों से युक्त होकर उपर्युक्त विधान से नियमपूर्वक जो कार्य करता है वह कुटीचक कहलाता है ।

निर्णय सिन्धु के तृतीय परिच्छेद में कहा गया है कि-"कुटीचक सन्यासी कुटी का निर्माण कराकर उसमें निवास करे तथा काषाय वस्त्र, शिखा, शुक्ल यज्ञोपवीत एवं त्रिदण्डी रहे साथ-साथ स्व गृह में भोजन करे और आत्मज्ञान को वढावे ।

(२) बहूदक संन्यासी का लक्षण

बहूदक सन्यासी त्रिदण्ड, कमण्डलु शिखा, शुक्ल यज्ञोपवीत, काषाय वस्त्र से युक्त रहते हैं । मादक वस्तुओं और मांस को छोडकर ब्रह्मर्षि के घर में मात्र आठ

रिणो ब्रह्मर्षि गृहे मधुमासं वर्जयित्वाष्टौ ग्रासान्भैक्षाचरणं कृत्वा योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । इति भिक्षुकोपनिषदि । त्रिदण्डं कुण्डिकाश्चैव भिक्षाधारं तथैव च । सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव बहूदकः । इति लघुविष्णुस्मृतौ ।

प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ।
विश्वरूपं हृदिध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥

☬ हंसलक्षणम् ☬

"अथ हंसानाम ग्राम एकरात्रं नगरे पञ्चरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रं तदुपरि न वसेयुः । गोमूत्रगोमयाहारिणो नित्यं चान्द्रायणयोगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । इति भिक्षुकोपनिषदि । त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवस्थितः । इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोऽभिधीयते ॥ इति लघुविष्णुस्मृतौ-

कृच्छैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ।
अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकांक्षन् ब्रह्मणः परम् ॥
यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् ।
अयं परिग्रहोनान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥

ग्रास भिक्षा की याचना करते हुये योग मार्ग में जो स्थित मोक्ष है-उस मोक्ष की ही कामना करते रहते हैं ।

लघुविष्णु स्मृति में भी विवेचन किया गया है कि बहूदक सन्यासी, त्रिदण्ड, कुण्डी, भिक्षापात्र एवं शुक्ल यज्ञोपवीत को सदा धारण करे । सतत प्राणायाम करते हुये गायत्री मन्त्र का भी जप किया करे । इसप्रकार बहूदक सन्यासी के लिये नियम विवेचित है ।

☬ (३) हंस संन्यासी का लक्षण ☬

हंस संन्यासी बहूदक संन्यासी के समान ही बाह्य वस्तु को धारण करते हुये ग्राम में एक रात्रि निवास करे । नगर में पाँच रात्रि पर्यन्त एवं क्षेत्र में सप्तरात्रि पर्यन्त निवास करे । हंस संन्यासी समय-समय पर पञ्चगव्य भक्षण करते हुये साथ-साथ चान्द्रायण व्रत करते हुये सदा योग मार्ग में स्थित मोक्ष की ही अभिलाषा करते हैं ।

लघुविष्णु स्मृति में कहा गया है कि हंस संन्यासी पुत्रादि को छोडकर योग मार्ग में व्यवस्थित होकर मन तथा इन्द्रिय को जो नियन्त्रण में रखे उसे ही हंस संन्यासी

♆ परमहंस लक्षणम् ♆

"अथ परमहंसा नाम संवर्त्तकारुणिं श्वेतकेतुजडभरतदत्तात्रेयशुकवाम देवहारीतकप्रभृतयोऽष्टौ ग्रासांश्चरन्तौ योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते ।

इति भिक्षुकोपनिषदि

आध्यात्मिकं ब्रह्मजपन् प्राणायामांस्तथाचरन् ।
वियुक्ताः सर्वसंगेभ्यो योगिनित्यं चरेन्महीम् ॥

इति लघुविष्णुस्मृतौ ।

आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
चतुर्थोऽयं महानेषा ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्रीदण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतोनित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

इति मनुस्मृतौ ।

सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ।
एकारामः परिव्रज्यभिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥

कहते हैं । इन संन्यासिओं को कृच्छ्र चान्द्रायण, तुलापुरुष आदि अन्य व्रतों से भी ब्रह्म पद की ही कामना करते रहना चाहिये । इन सभी व्रतों में लिप्त होते हुये शरीर के ममत्व को त्यागकर शरीर सुखा दे । हंस संन्यासी के लिये यज्ञोपवीत, दण्ड, मक्खी आदि जीवों के निवारण के लिये वस्त्र तथा वेद ज्ञाता, ही हंस संन्यासी उपयुक्त है इससे पृथक् कुछ नहीं । इसप्रकार हंस संन्यासी के लिये उपर्युक्त नियम कहा गया है ।

♆ (४) परमहंस संन्यासी का लक्षण ♆

परमहंस संन्यासी भी बाह्य वस्तु बहूदक संन्यासी के सदृश धारण करते हुये ब्रह्मर्षि के घर में सात्विक आठ ग्रास ही भोजन करते हैं तथा योग मार्ग में अपने आपको स्थित करके मोक्ष की ही प्रार्थना करते रहते हैं । वे संवर्त्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, जडभरत, दत्तात्रेय, शुकदेव, वामदेव हारीत आदि इन परम्परा के महर्षि हैं ।

परमहंस सन्यासी उसे कहते हैं जो आध्यात्मिक चिन्तन करते हुये ब्रह्म को जपते हुये प्राणायाम करते रहते हैं । गोष्ठी से रहित होकर सदा इस भूमण्डल पर पर्यटन

इति याज्ञवल्क्यस्मृतौ यतिधर्मप्रकरणे ।

चतुर्धाभिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः । अत्रेर्वाक्यम् ।

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः । इति भागवते ।

स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डीद्वारकामगात् ॥ इति ।

तदासाद्य दशग्रीवो क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥

इति श्रीमद्रामायणे अरण्यकाण्डे ।

श्लक्ष्णं काषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामेचांशेऽवसज्याथ शुभेयष्टिकमण्डलू ॥ महाभारतेऽपि

रावणस्तु यतिर्भूत्वा मुण्डः कुण्डी त्रिदण्डधृक् ।

महाभारतस्य भविष्यपर्वे-

शिक्यं च दारवंपात्रं द्विदलान् वेणकान् बहून् ।
इदमप्यपरम्पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥

कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकम्महद्धनम् ।
कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥

करते हैं । आत्मनिष्ठ होकर जिसने पुत्रकी अभिलाषा, धनकी कामना तथा लोक की इच्छा को त्यागकर दिया है इतना ही नहीं सभी परिग्रहों को भी अपने से बहुत दूर हटा दिया है उसीको ध्यान भिक्षु परमहंस संन्यासी कहते हैं वही सर्वश्रेष्ठ हैं ।

महर्षि मनु ने अपने स्वरचित ग्रन्थ मनुस्मृति में कहा है कि परमहंस संन्यासी को शिखा छोडकर, केश, नख, दाढी, मूँछ को कटवा कर त्रिदण्ड, कमण्डलु, काषाय वस्त्र धारण करना चाहिये । इन संन्यासियों को किसी भी प्राणियों को पीडा न देना चाहिये तथा सदा भ्रमण करना चाहिये ।

याज्ञवल्क्य स्मृति के यतिधर्म प्रकरण में भी कहा गया है कि परमहंस संन्यासी को सभी जीवों का हित करना चाहिये, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करते हुये सभी को त्यागकर भिक्षा के लिये ग्राम में प्रस्थान करना चाहिये ।

चारों प्रकार के संन्यासियों के लिये बाह्य वस्तु समान ही है । उपर्युक्त चारों प्रकार के संन्यासी त्रिदण्डी होते हैं ।

अत्र शिक्यसाहचर्यात् द्विदलान् वेणुकानिति पदाच्च पुष्करवासिनः सर्वे त्रिदण्डिन एवातस्त्रिदण्डं ग्रहणीयमिति ।

एकदण्डस्य तु शास्त्रे निषेधो वर्त्तते ।

यावन्नस्युस्त्रयोदण्डास्तावदेकेन वर्त्तयेत् । इति मेधातिथेर्वाक्यम् ।

एकदण्डो धृतोयेन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।

स याति नरकान्घोरान् महारौरव संज्ञितान् । इति यमस्मृतौ ।

एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ।

न तेषामपवर्गोऽस्ति लिङ्गमात्रोपजीविनाम् ॥ विष्णुस्मृतौ ।

उपरोक्त महर्षियों के श्लोकादिकों से यह प्रमाणित होता है कि त्रिदण्डी संन्यासी ही पूज्यतम हैं । परमहंस संन्यासी त्रिदण्डी संन्यासी को ही कहा जाता है।

अर्जुन ने सुभद्रा का हरण त्रिदण्डी सन्यासी के वेश को धारण करके ही किया था । त्रिदण्ड धारण कोई नवीन नहीं अतिप्राचीन काल की है । राक्षसराज रावण भी श्रीसीताजी का हरण इसी वेश में किया था ।

राक्षसराज रावण निर्जन स्थान में जाकर जल्दी ही संन्यासी का वेश धारण करके श्रीसीताजी के पास गया । चिक्कन काषाय वस्त्र, यज्ञोपवीत, शिखा, छाता, जूता धारण करते हुये वाम अंश में त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करके श्रीसीताजी के समीप में गया था ।

महाभारत में भी कहा गया है कि राक्षसराज रावण शिखा को छोडकर सभी बालों को कटवाकर कमण्डलु त्रिदण्ड को साथ लेकर यति के वेश में श्रीसीताजी के पास गया था ।

महाभारत के भविष्य पर्व में हंस डिंभक के कथा प्रसङ्ग के अवसर पर कहा गया है कि पहले अनेकों त्रिदण्डी हो चुके हैं ।

महर्षि दुर्वासा का कथन है कि हंस डिंभक ने शिक्य और काष्ठ का भिक्षापात्र एवं द्विदल आदि अनेकों दण्डों को तोड दिया साथ-साथ इन दोनों ने लंगोटी को भी फाड डाला जो कि हम सवों का अमूल्य धन है । इन दोनों के साहस को देखा जाय । अतः हे जगत्प्रभो कमण्डलु को भी उसने खप्पर बना डाला ।

उपर्युक्त श्लोकों में शिक्य के साथ वेणु का नित्यादि पद रहने से यह विदित

यस्त्वेकदण्डमालम्ब्य ब्राह्मंकर्मयतिस्त्यजेत् ।

स चाण्डालो महापापी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ इति बृहत्पराशरस्मृतौ ।

एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति वहवो नराः ।

नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते । इति निर्णयसिन्धो स्तृतीय परिच्छेदे ।८।

अस्य चास्य संन्यासस्य दीक्षितः पञ्चसंस्कारसम्पन्नः एव अधिकारी पुराणधर्मशास्त्रग्रन्थैः समर्थितत्वात् । उक्तञ्च श्रीसम्प्रदायाचार्येण महर्षि प्रवरेण श्रीबोधायनेन मुनिना-

होता है कि पुष्कर निवासी सभी त्रिदण्डी ही थे । अतः इस शिष्टाचार से ब्राह्मण को निश्चित रूपसे त्रिदण्ड धारण करना चाहिये । शास्त्रानुसार एक दण्ड धारण करना निषिद्ध है ।

मेधातिथि कहते हैं कि यावत् त्रिदण्ड प्राप्त नहीं हो जाता है तावत्पर्यन्त एक दण्ड धारण करे ।

यम स्मृति में कहा गया है किं जो एक दण्ड को धारण करता है तथा सर्वत्र भोजन करलेता है साथ-साथ अज्ञानी भी है वह महारौरव नामक नरक को प्राप्त करता है ।

विष्णु स्मृति में कहा गया है कि एक दण्ड के आश्रय से ही अनेकों ब्राह्मण जीते हैं केवल लिङ्ग धारण करने से ही जीवन-यापन करनेवालों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ।

बृहत्पराशर स्मृति में भी कहा गया है कि जो एक दण्ड को धारण करके ब्राह्मण कर्म को त्याग देता है वह डोम और महापापी है तथा मृत्यु के वाद वह रौरव नामक नरक को प्राप्त करता है ।

निर्णय सिन्धु के तृतीय परिच्छेद में कहा गया है कि बहुत मनुष्य एक दण्ड के आश्रय से ही जीवन धारण करते हैं । वे सभी कर्मों को परित्याग करदेने से रौरव नामक नरक में जाते हैं । अतः संन्यासियों को अपने कर्म को कदापि नहीं छोडना चाहिये ॥८॥

और इस पूर्व वर्णित संन्यास का दीक्षित श्रीवैष्णवीय पञ्चसंस्कार सम्पन्न ही अधिकारी है । क्योंकि पुराण धर्मशास्त्र ग्रन्थों से अनुमोदित होने के कारण । श्रीसम्प्र

धर्मशास्त्रसमारूढा वेदखड्गधराद्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यं ब्रूयुस्स धर्मः परमोमत्तः ॥
अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम् ।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाहीनोमृतोनरः ॥ पदमोत्तर पुराणे
जपस्तपो व्रतं तीर्थं यज्ञोदानं तथैव च ।
गुरुतत्वमविज्ञाय सर्वं व्यर्थं भवेत्प्रिये ॥ स्कन्धपुराणे
धर्मार्थकाममोक्षाणामालयः साम्प्रदायिकः ।
सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फलामताः ॥
यदृच्छयाश्रुतं मन्त्रं छलेनाथबलेन वा ।
पत्रेस्थितं च गाथां च तं जनयेदनर्थकम् ॥ वृद्धगौत्तमस्मृतौ ।

दाय के ९ वें आचार्य महर्षि प्रवर श्रीबोधायन मुनिजी के द्वारा कहा भी गया है कि धर्मशास्त्र रूपी रथपर चढे हुये वेद स्वरूप खड्ग को धारण करनेवाले क्रीडा लाप में भी जिसको कहते हैं वह परम सद्धर्म विद्वानों के द्वारा माना गया है । पद्मोत्तर पुराण में भी कहा है-हे पार्वती जिस व्यक्ति को दीक्षा प्राप्त नहीं हुयी है । उसके द्वारा किया गया समस्त कार्य निरर्थक है । हे पार्वति ? दीक्षाहीन मनुष्य मानव शरीर त्याग करने के वाद पशु योनि को प्राप्त करता है । इसीप्रकार स्कन्दपुराण में कहा है-जप तप व्रत तीर्थ यज्ञ और दान ये सभी सद्गुरु रूपी विशिष्ट तत्त्व को विना जाने निरर्थक है । वृद्धगौत्तम स्मृति में भी कहा है-धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन समस्त पुरुषार्थों का आगार साम्प्रदायिकता है । सम्प्रदाय (गुरु परम्परागत विशिष्ट ज्ञान) विहीन समस्त मन्त्र समुदाय निष्फल है । छल कपट पूर्वक अथवा बल पूर्वक अथवा संयोगवश सुना गया मन्त्र और पुस्तकों में लिखी गयी कथा वार्ता अथवा कथा आदि के प्रसङ्ग में सुना गया मन्त्र ये सभी गुरु परम्परागत न होने के कारण अनर्थकारी होता है । अतः शास्त्रीय विधान पूर्वक प्राप्त मन्त्र ही सार्थक है । तदर्थ सद्गुरु आचार्य से सविधि श्रीराममहामन्त्र प्राप्तकर साधना करना चाहिये । शुक्लयजुर्वेद में भी कहा है-धर्म अभिवृद्धि की इच्छा पूर्वक किया गया व्रत से व्यक्ति दीक्षा प्राप्त करते हैं । गुरु की परम कृपा से प्राप्त दीक्षा से अनुकूलता प्राप्त करता है । गुरु की अनुकूलता से श्रद्धा लाभ होता है तथा श्रद्धा से परम सत्य उपलब्ध होता है । हे दीक्षा तूँ तपस्या का

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणाश्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ शुक्लयजुर्वेदे ।
दीक्षातपसो तनूरसि तां त्वा शिवां शग्माम् ।
परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥ शुक्लयजुर्वेदे ।
वैष्णवो भवति विष्णुर्वैयज्ञः स्वयमेवैनम् ।
तद्देवतया स्वेन छन्दसा संवदर्धयति । ऐतरेय ब्राह्मणे।९।

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य कृतौ

श्रीवैष्णवसन्यासमीमांसायां सन्यासस्वरूप

निरूपणात्मकं प्रथमंपुष्पं सम्पन्नम् ।

श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये

पञ्चसंस्काराः

प्रसङ्गादत्र वक्ष्यामि पञ्चसंस्कारसंज्ञिताम् ।
दीक्षां मत्प्रीतिजननीं पूजायोग्यो यया द्विजः ॥१॥

शरीर है। शान्त एवं सुखदायी उस दीक्षा को मैं धारण करता हूँ। मेरा वर्ण भद्रता का अभिवर्धक हो। ऐतरेय ब्राह्मण में भी कहा है-जो पुरुष वैष्णव होता है उसे यज्ञ स्वरूप विष्णु अपनी इच्छानुसार अपनी परम शक्ति से उस देवत्व से सम्बर्धित करते हैं ॥९॥

इसप्रकार-आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दा चार्यजी की रचना श्रीवैष्णव सन्यास मीमांसा में सन्यास स्वरूप निरूपणात्मक प्रथम पुष्प का प्रकाश सम्पन्न हुआ।

श्रीरामः शरणं मम

卐 पञ्चसंस्कार 卐

विष्णु तिलक संहिता में कहा गया है कि-यहां पर पञ्चसंस्कार नाम से अभिहित मुझ श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता को उत्पन्न करनेवाले श्रीवैष्णवी दीक्षा का विवेचन करता हूँ। जिस संस्कार से संस्कृत होने पर ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य पूजा के योग्य हो जाता है।

तापः पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।
पञ्चसंस्कारदीक्षैषा देवदेवप्रियावह ॥२॥
तापं पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रोमाला तथैव च । वि.ति.सं.
अमीहि पञ्चसंस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः ॥
तस्मात् तापादि संस्काराः कर्तव्या धर्मकांक्षिणा ।
अयमेव परोधर्म प्रधानः सर्वकर्मणाम् । हारीतस्मृतिः ।
पुण्ड्रनामक्रियाचैव मन्त्रश्चैवार्चनं हरेः ।
संस्काराः पञ्चकर्तव्या ब्राह्मणस्य विधानतः ।

वृहद्ब्रह्मसंहितायामपि ।

विरक्तो वा गृहस्थो वा सकामोऽकाम एव वा ।
तापादिना विमुक्तः स्यात् पातकै कोटिजन्मजैः ।

देवाधिदेव भगवान् श्रीरामजी के प्रसन्नता जनक दिव्य आयुधों को सन्तसकर बाहुमूल में धारण करना ललाट में दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा भगवत् सम्बन्धि नामकरण, भगवत् पूजन, षडक्षर तारक मन्त्र ग्रहण करना एवं यज्ञ–तुलसी माला का सर्वदा धारण करना ये पञ्चसंस्कार है । यही श्रीवैष्णवों की दीक्षा है । यह दीक्षा सर्वेश्वर श्रीरामजी को अत्यन्त प्रिय है ।

हारितस्मृति में भी कहा है-प्रत्येक धर्माभिलाषी मानवों को ताप आदि पञ्चसंस्कारों से सुसंस्कृत होना चाहिये यही सव से उत्कृष्ट धर्म है । तथा समस्त धार्मिक कर्मों में परमश्रेष्ठ एवं परमकल्याणकारी है । पराशरस्मृति के उत्तरकाण्ड का वचन है कि–ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रभुप्रिय नाम, तापादिक क्रिया मन्त्र तथा तुलसी माला पूर्वक भगवत् पूजन ये पाँच संस्कार प्रत्येक ब्राह्मण को विधि पूर्वक करना चाहिये । बृहद्ब्रह्म संहिता में भी कहा गया है-विरक्त हो अथवा गृहस्थ हो, कामना युक्त हो या निष्काम हो किन्तु सभी को ताप आदि पाँच संस्कारों से सुसंस्कृत होना आवश्यक है । ताप आदि संस्कार से मानव करोड़ो जन्मों से अर्जित पातकों से विमुक्त होता है इत्यादि । वेद धर्मशास्त्र एवं पुराण आदि के वचनों से पञ्चसंस्कार की आवश्यक कर्तव्यता प्रतिपादित होती है । पराशर संहिता के उत्तर खण्ड के दशम अध्याय में भी कहा गया है कि–अर्थ पञ्चक तत्त्व को यथार्थ रूपमें जानने वाला, पञ्चसंस्कारों

एवमादिभिः श्रुतिस्मृतिपुराणादिवचोभिः पञ्चसंस्काराणामावश्यक कर्तव्यता प्रतिपादितम्भवति । पाराशरोत्तरखण्डस्य दशमाध्यायेऽप्युक्तम्-

अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः

आकारत्रयसम्पन्ना महाभागवताः स्मृताः ॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करेऽपि श्रीमताभगवता श्रीरामानन्दाचार्येणाभिहितम्-

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।

श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः ॥

एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं परमां प्रकुर्यात् ।

महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीवल्लभरावणारेः ॥

इत्थं ससीतरामोपासननिरतानां श्रीवैष्णवानां पञ्चसंस्काराः कर्तव्याः । तत्र को विधिरिति जिज्ञासायां सनत्कुमारसंहितायां युधिष्ठिरं श्रीकृष्णद्वैपायनेन व्यासेनाभिहितम्-चैत्रशुक्लनवम्यां वा कर्तिकी पूर्णिमादिने । सीताजन्मदिने चापि विवाहदिवसे शुभे । राज्याभिषेककाले वा श्रीराम विजये दिने । अन्ये शुभे च काले वा सुदीक्षां धारयेत्सुधीः। अयोध्याचित्रकूटे

से सुसंस्कृत, अनन्यार्हत्व, अनन्यशेषत्व तथा अनन्यभोग्यत्व इन तीन आकार से सम्पन्न प्रभु सर्वेश्वर श्रीरामजी के प्रिय श्रीवैष्णव महाभागवत कहा जाता है। श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर में भी श्रीमान् भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा कहा गया है कि-वेदोक्त मन्त्रों के अनुसार अग्नि में तपाये हुये धनुषवाणों से दोनों भुजाओं को अङ्कित करना, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना श्रीवैष्णवता सूचक नाम ग्रहण करना, श्रीराममहामन्त्र को हृदय में धारण करना तुलसी की कण्ठी धारण करना ये पाँचों संस्कार मोक्ष के कारण भूत परम समर्थ साधन है ।

इसप्रकार ये पञ्चसंस्कारों द्वारा संस्कृत होकर महाभगवत बनकर, महा इन्द्र नीलमणि के समान श्याम कान्ति सम्पन्न, कृपानिधि, श्रीजानकी माताजी के सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अहर्निश भजन करें।

इसप्रकार श्रीसीताजी सहित सर्वेश्वर श्रीरामजी की उपासना में पूर्ण तत्पर श्रीवैष्णवों का पञ्चसंस्कार करना चाहिये । इन पञ्चसंस्कारों में क्या विधान है ऐसा जानने की इच्छा होने पर सनत् कुमार संहिता में महाराज युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण द्वैपायन

वा विदेहनगरेऽथवा । रामधाम्नि तथा चान्ये यद्वा श्रीराममन्दिरे ॥ तत्र लोकशास्त्रसम्मतं कामक्रोधादिदोषविहीनं निष्फल्मषं गुरुदीक्षितं श्रीराम स्यानन्यभक्तं गुणगणगरिष्ठं गुरुं विधाय दीक्षां गृह्णीयात् सम्प्रदाय परम्परा विधानमनुसृत्य गुरुः शुभां वेदीं कृत्वा, तत्र श्रीजानकीसहितं सपार्षदं श्रीरामं संस्थाप्य श्रीहनुमन्तं श्रीरामभक्तं वेदसिद्धान्तानुसारेण संस्थाप्य, षोडशो पचारेणान्योपचारेण वा यथोपलब्धद्रव्यैः शिष्यसहितः संपूजयेत् ततः पुरुषसूक्तेन सविधिसंस्थापितेऽग्नौ विष्णवे आज्याहुतिं दत्वा, ब्रह्मतारक षडक्षरश्रीराममन्त्रेणाष्टोत्तरशतमाज्याहुतिं दद्यात् ।

वेदव्यास के द्वारा कहा गया है-चैत्रशुक्ल नवमी के दिन अथवा कार्तिकी पूर्णिमा या श्रीजानकी के जन्म दिन अथवा जानकी विवाह के शुभ दिन में भी, या भगवान् श्रीरामजी के राज्याभिषेक दिवस में अथवा विजयादशमी के दिन या अन्य शुभ दिन या शुभ अवसर पर समझदार व्यक्ति अपनी श्रीवैष्णवी दीक्षा करावें। अयोध्या अथवा चित्रकूट या विदेह नगर जनकपुर श्रीरामतीर्थ अथवा अन्य श्रीरामजी मन्दिर में दीक्षा होनी चाहिये इस श्रीवैष्णवी दीक्षा में लोक व्यवहार एवं शास्त्र सम्मत काम क्रोध आदि दोषों से रहित पाप रहित गुरु परम्परा से दीक्षित भगवान् श्रीरामजी का अनन्य भक्त गुणगण से अतिशय महत्वपूर्ण गुरुको बनाकर दीक्षा ग्रहण करें। उक्त दीक्षा में अपने श्रीसम्प्रदाय परम्परा के विधान का अनुसरण करके गुरु शुभ जनक वेदी बनाकर उस वेदी के ऊपर श्रीसीताजी एवं पार्षदों के सहित भगवान् श्रीरामजी की स्थापना करके श्रीहनुमानजी एवं श्रीराम पार्षद भक्तों को वैदिक सिद्धान्त के अनुसार विधिपूर्वक स्थापना करके षोडशोपचार अथवा अन्य उपचार से समय एवं सामर्थ्य के अनुरूप उपलब्ध द्रव्यों से शिष्य सहित विधिवत् पूजन करें। तत्पश्चात् पुरुषसूक्त के द्वारा विधिपूर्वक संस्थापित अग्नि में विष्णु के उद्देश्य से घी अथवा चरु की आहुति देकर ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र से एक सौ आठ घी की आहुति प्रदान करें। इसके वाद विशुद्ध धातु से बनी हुई श्रीरामजी की धनुषबाण की मुद्रा को सुसंस्कृत अग्नि में मन ही मन तारक मन्त्र पढता हुआ तपावे। उन संतप्त धनुषबाण की मुद्राओं द्वारा गुरु शिष्य की दोनों भुजाओं के मूल में अपने श्रीसम्प्रदाय के अनुसार वायां में धनुष एवं दाहिना में बाण को अङ्कित करें। तत्पश्चात् मन ही मन श्रीराममन्त्र जपता हुआ

पश्चात् विशुद्धधातुविनिर्मितां श्रीरामस्यधनुर्वाणमुद्रां सुसंस्कृते पावके तारकमन्त्रं पठन् तापयेत् । ताभ्यां च धनुर्वाणमुद्राभ्यां गुरुः शिष्यस्य भुजयोर्मूले सम्प्रदायानुसारेण वामे धनुः दक्षिणे च बाणमङ्कयेत् । ततो मनसा मन्त्रं जपन् ललाटे तिलकं कुर्यात् । तिलकस्य मृण्मयत्वमूर्ध्वपुण्ड्रत्वं श्रीरामपादाकृत्तित्वं च विहितम् । मध्ये च हरिद्रापरिष्कृतां रक्तां श्रीराम वल्लभास्वरूपां सर्वेश्वरश्रीरामचरणरजचूर्णं शुक्लं वा श्रियं धारयेत् ततः श्रीरामसम्बद्धं तन्नाम भूयोभूयोवदेत् । ततः शिष्यस्य दक्षिणेकर्णे अन्यानश्रावयन् ब्रह्मतारकं षडक्षरं श्रीराममहामन्त्रं भूयोभूयः श्रावयेत् । इत्थं विधानपूर्वकं संस्कारैः शिष्यं विधाय, तस्य कण्ठे सूक्ष्माद्विधाकृती तुलसीकाष्ठविनिर्मिता श्लक्ष्णा कण्ठलग्ना मालिका परिधापयेत् । तां च तुलसीमालिकां शिष्यः क्षणमपि न त्यजेत् ।

लब्धपञ्चसंस्कारः शिष्यस्ततो गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य वस्त्रालङ्कारद्रव्यफल पुष्पादिभिः पूजयित्वा साष्टाङ्गं दण्डवत् प्रणमेत् । निवेदयेच्च हे स्वामिन् ? अहं भवतो दासोऽस्मि, मयि सर्वदा प्रसीद । गुरुश्च शिष्यं शुभाशिषा संयोज्य, आवाहितान् देवान् यथाविधिविसर्जयित्वा दीक्षां समापयेत् । शि-

शिष्य के ललाट में तिलक करे । तिलक में श्रीरामरज श्वेत मृत्तिका का ऊर्ध्वपुण्ड्र भगवान् श्रीरामजी के चरणों के आकृति का विधान है मध्य भाग में हल्दी से परिष्कृत लाल रंग की श्रीरामवल्लभास्वरूपा श्री अथवा श्रीरामचरणरज श्वेत श्री का चिह्न धारण करें । तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामजी से सम्बद्ध उस शिष्य का विहित नाम पुनः पुनः वोले । नामकरण के पश्चात् शिष्य के दाहिने कान में दूसरे को नहीं सुनाते हुये ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र को पुनः पुनः सुनावें । इसप्रकार विधान पूर्वक संस्कारों से सुसंस्कृत शिष्य को बनाकर उसके कण्ठ में छोटी-छोटी दोलर की तुलसी की काष्ठ से बनी हुयी चिकनी एवं सुन्दर कण्ठ से सटी हुयी माला (कण्ठी) पहनावें । और उस कण्ठी को शिष्य एक क्षण भी परित्याग नहीं करे ।

पाँच प्रकार के संस्कारों को प्राप्त किया हुआ शिष्य तत्पश्चात् गुरु की प्रदक्षिणा करके वस्त्र, आभूषण, धन एवं फल पुष्प आदि से गुरु की पूजा करके दण्डवत् साष्टाङ्ग-प्रणाम करे और निवेदन करे कि हे आचार्यजी मैं आपका दास हूँ मेरे ऊपर

ष्यस्तु सुभोज्यमन्नादिकं भगवदर्पणपूर्वकं गुरुं भोजयित्वा अन्यान् वैष्णवान् भोजयेत्, यथा शक्त्तितेभ्योद्रव्यदक्षिणां दत्वा गुरोर्भूक्त्तावशिष्टं भुञ्जीत, तच्चरणोदकञ्च भजेत् ॥१॥

पूर्वं संक्षेपेण दीक्षाप्रकारमुक्त्वैकेकशो विविच्य तापपुण्ड्रनाम मन्त्रमालासंस्काराणां निरूपणात्-पूर्वं पद्मोत्तरखण्डमनुसृत्याचार्यस्वरूप मुच्यते ।

श्रृणुवत्स प्रवक्ष्यामि मन्त्रदीक्षाविधिं पराम् ।
आचार्यं संश्रयेत् पूर्वं मदाश्रयणसिद्धये ॥
आचार्योवेदसम्पन्नो विष्णुभक्त्तो विमत्सरः ।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्त्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः ॥
सत्सम्प्रदायसंयुक्त्तो ब्रह्मविद्याविशारदः ।
अनन्यसाधनश्चैव तथानन्यप्रयोजकः ॥

आप सदैव प्रसन्न रहें। और गुरु दीक्षित शिष्य को शुभाशीर्वाद से संयुक्तकर आवाहित देवताओं का विधान के अनुसार विसर्जन कर दीक्षा विधि को सम्पन्न करे।

शिष्य तो सुन्दर भोजन करने योग्य अन्नपानादि को भगवान् के भोग लगाकर गुरु को भोजन कराकर अन्य वैष्णवों को भोजन करावें तथा उन्हें अपनी शक्त्ति के अनुसार धनकी दक्षिणा देकर गुरु के भोजनावशिष्ट का भोजन करे एवं गुरु के चरणोदक का सेवन करे ॥१॥

ब्रह्माजी से भगवान् कहते हैं कि-हे वत्स श्रेष्ठतम मन्त्र दीक्षा विधान कहता हूँ उसे तत्परता पूर्वक सुनो। मेरा आश्रय प्राप्त करने के लिये पहले नियमानुसार विधिपूर्वक आचार्य का आश्रय ग्रहण करें। आचार्य वेदों के ज्ञान से परिपूर्ण, विष्णु भक्त्त, अन्य शुभ गुणों से युक्त्त द्वेष रहित मन्त्र रहस्य का जानकार, मन्त्र का भक्त्त सर्वदा मन्त्र पर आश्रित सर्वतोभावेन पवित्र, प्रशस्त सम्प्रदाय (परम्परा) से सम्पन्न (दीक्षित) ब्रह्मविद्या तत्त्व ज्ञान में पारंगत, इष्ट संस्मरण के अतिरिक्त्त जिनका अन्य कोई साधन नहीं है, तथा परमार्थ साधन के अतिरिक्त्त किसी अन्य साधन में प्रेरित नहीं करनेवाला, शिष्य का परमहितैषी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, परम वैराग्य सम्पन्न क्रोध लोभ आदि दोषों से रहित, सच्छास्त्र निरूपित व्रताचरणकारी एवं सद्व्रत का

ब्राह्मणो वीतरागश्च क्रोधलोभविवर्जितः ।

सद्व्रतीशासिताचैव मुमुक्षुः परमार्थवित् ॥

एवमादिगुणोपेत आचार्यस्स उदाहृतः ।

आचारान् शासयेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः ॥२॥

गुरुगीतायामप्युक्तः-

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादीविडम्बकः ।

स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम् ॥

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।

तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यसन्तापहारकम् ॥

भिन्ननावाश्रितस्तब्धो यथा पारं न गच्छति ।

ज्ञानहीनं गुरुं प्राप्य कुतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥३॥

उपदेशक नित्यपार्षदत्व स्वरूप मोक्षकी अभिलाषा करनेवाला, एवं परमार्थ तत्त्व विज्ञानी प्रभृति प्रशस्त गुणगण से परिपूर्ण महापुरुष आचार्य कहा गया है। क्योंकि व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है कि-जो आचारों का उपदेश करे वह आचार्य कहा जाता है। सार्थक उपदेश उसी का होता है जो व्यक्ति स्वयं शास्त्र विहित आचरण करता है। अतः आचार्य को उक्त गुणों से सम्पन्न होना चाहिये ॥२॥

जो मिथ्यावादी उपहासकारी एवं ज्ञान विहीन हो ऐसे गुरु को परित्याग करदेना चाहिये। जो व्यक्ति स्वयं की विश्रान्ति प्रदान करना नहीं जानता है वह दूसरे को क्या शान्ति प्रदान करेगा। इस संसार में शिष्यों के धनका अपहरण करनेवाले अनन्त गुरु है। एक मात्र मैं उसी गुरु को दुर्लभ समझता हूँ जो अपने शिष्य के सन्ताप का निवारण करसके। जिस प्रकार छीद्र युक्त नाव में विद्यमान निष्क्रिय व्यक्ति (जिसे दूसरा उपाय नहीं दीखता है) वह नदी के दूसरे पार में नहीं जाता है। अर्थात् डूब जाता है उसीप्रकार अज्ञानी गुरु को उपलब्ध कर शिष्य किसप्रकार परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष को प्रासकर सकेगा। अतः उपर्युक्त गुण सम्पन्न आचार्य को सोच समझकर वरण करना चाहिये ॥३॥

तदत्रसदाचार्यविषयेश्रुतिः-

"आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि ।
स्वायमाचरते यस्तु तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

तथाचानन्दभाष्यकारश्रीचरणाः श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे-

"यतेन्द्रियः शुचिः शुद्धवेषधृक् सुकुलोद्भवः ।
सदाचारपरोनम्रः शास्त्रज्ञोदेशनापटुः ॥
विरक्तधर्मनिरतो ध्यानाभ्यासी सुबुद्धिमान् ।
निग्रहेऽनुग्रहे चैव समर्थो देशिकोमतः ॥"

तथैव जगद्विजयिनो महामहोपाध्यायजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यवेदान्तकेसरिचरणाः श्रीआचार्यस्मृतौ-

इस प्रकृत सत् आचार्य के विषय में श्रुति कहती है-जो सत् शास्त्रों के अर्थों को सम्यक् रूपसे चयन संकलन करे एवं उसका आचरण में स्थापनकर दूसरे साधकों से आचरण करावें तथा स्वयं भी उन सभी शास्त्रीय आचरणों का आचरण-पालन करे उसे आचार्य कहते हैं । सदाचार्य के विषय में प्रस्थानत्रयों के आनन्दभाष्यकारजी श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में निर्देश करते हैं-शास्त्र कथित पञ्चसंस्कार मोक्ष का साधन है ऐसा वताया है और यह संस्कार गुरु साध्य है तो गुरु कैसा हो । उसका लक्षण क्या है । इत्यादि वातों को समझाने के लिये कहते हैं-"यतेन्द्रिय" इत्यादि । जो वाह्य तथा आन्तर इन्द्रियों पर जय प्राप्त करलिया हो, शरीरादि पवित्र हो शुद्ध सादा वेष को अर्थात् श्रीवैष्णवों के हेतु उचित वेश का धारण कर्ता हो, ब्राह्मणादिक विशिष्ट कुल में समुत्पन्न हो, साधुओं के श्रीवैष्णवों के आचार-विचार में तत्पर हो, विनम्र हो न तु उद्धत हो, साङ्ग वेदादि शास्त्रों का ज्ञानवान् हो और देशना-उपदेश देने में चतुर हो अर्थात् सत् उपदेश-व्याख्यान कार्य में दक्ष हो ऐसा जो हो उसे गुरु बनाना चाहिये जैसे तैसे को नहीं । जो व्यक्ति विरक्त धर्म अर्थात् श्रीवैष्णवीय समस्त पूर्वाचार्य प्रवर्तित-प्रवर्धित श्रीवैष्णव मत का पालन करने में सर्वदा संलग्न हो और ध्यानाभ्यासी हों न तु विरक्त वेश विरोधी कार्य में निरत हो वेदाभ्यास करनेवाला हो बुद्धिमान् एवं देशकाल को समझकर कार्य करनेवाला हो और निग्रह तथा अनुग्रह करने में सामर्थ्य वाला हो ऐसे व्यक्ति को ही आचार्य-गुरु बनावें ।

श्रुतिसुशास्त्रप्रबुद्धिरुदारधीः विहितकर्मकरोऽथ निषिद्धभीः ।
सकलजीवदयोऽति प्रसन्नगीः गुरुरवैमि कृपालुसुवैष्णवः ॥३॥
विप्रान्वयोऽथ शमषट्कयुतो बुधश्च विद्याविवेकनिजधर्मपरायणो यः ।
विद्यानुराग्यधिगतार्थकपञ्चको यः संस्कारपञ्चकयुतोऽपि विरक्तदीक्षः ॥४॥

इसीप्रकार जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरीजी ने सत् आचार्य के विषय में अपना उत्कृष्ट प्रबन्ध आचार्य स्मृति में लिखा है-

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद ब्राह्मण और उपनिषद् तथा उनके पोषक गीता ब्रह्मसूक्ष आदि को श्रुति कहा जाता है, पुराण न्याय मीमांसा व्याकरण आदि शास्त्र कहे जाते हैं, जिसके द्वारा किसी विशिष्ट प्रयोजन से उपदेश करे उसे शास्त्र कहते हैं जो श्रेय मार्गानुगामी हो उसे सुशास्त्र कहा जाता है। इन वेदानुकूल एवं वेद में जिनकी सत् असत् विचार सक्षम बुद्धिं है तथा जिनकी प्राणी मात्र की कल्याणाभिलाषिणी उदार बुद्धि है, विहित कर्म (शास्त्र द्वारा विधान किया गया) निषिद्ध कर्म एवं सामान्य कर्म भेद से कर्म तीन तरह के होते हैं। शास्त्र विहित कर्म भी नित्य नैमित्तिक और काम्य भेद से तीन प्रकार के कहे जाते हैं। इनमें काम्य कर्म को किसी फल विशेष की प्राप्ति के उद्देश्य से होता है अतः विरक्त पुरुषों के लिये उतना उपयोगी नहीं माना जाता है। अतः नित्य नैमित्तिक कर्मों को नियम पूर्वक करनेवाला, क्योंकि-जिसके नहीं करने से पाप होता है, करने से कोई विशेष फल नहीं होता उसे नित्य कर्म कहते हैं जैसे सन्ध्या वन्दन आदि, जिसे नहीं करने से पाप एवं करने से पुण्य होता है उसे नैमित्तिक कर्म कहते हैं, जैसे-राहूपरागे स्नायात्। सूर्य चन्द्र ग्रहण करने पर स्नान करना चाहिये। वेद शास्त्र द्वारा निषेध किये गये कर्मों से जिसे भय होता है। जिन्हें प्राणी मात्र के प्रति दया होती है। तथा जिनकी अत्यन्त निर्लम दोष रहित वाणी है। इसप्रकार के परम कृपालु सद् श्रीवैष्णव आचार्य कहे जाते हैं ग्रह मैं जानता हूँ ॥३॥

और जो ब्राह्मण कुल में जन्म धारण किया हो शमदम तितिक्षा उपरति आदि शमादि छः सम्पत्ति से सम्पन्न तत्त्व ज्ञानी हो। विद्या एवं विचार की दृष्टि से आत्मीय एवं विश्वजनीन श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव धर्म परायण हों। और संसार के जन्म मरण वन्धन निवारण करनेवाली विद्या के प्रति अनुरागवान् ईशावास्योपनिषद में कहा है

सर्वेशसेवनधियाखिलकर्मकारि व्याख्यानपाटवयुतः करुणालयश्च ।
आचारवानतिथिदीनक्षुधातुराणां सम्पालको हरिगुरुप्रियसाधुसेवी ॥५॥

कि-लौकिक कर्म साधनारूप विद्याओं के द्वारा देह गेह संरक्षणात्मक मृत्यु के ऊपर विजय प्राप्तकर सर्वेश्वर श्रीरामजी की उपासना रूप विद्या के द्वारा अमरता को प्राप्त करे । इससे संसार बन्धन नाशक ज्ञान राशि को ही विद्या कहते हैं यह प्रमाणित होता है । तथा जो अर्थपञ्चक को हृदयङ्गम कर चुके हैं । प्राप्य अर्थात् प्राप्त करने का लक्ष्यभूत श्रीरामजी प्राप्ता, लक्ष्य को प्राप्त करने का अधिकारित्व एवं योग्यता सम्पन्न होना, परमात्म दर्शन रूप लक्ष्य प्राप्त करने का साधन ज्ञान होना उसे पालने से क्या लाभ होगा यह ज्ञान होना, प्राप्त होने में बाधायें क्या हो सकती है, तथा उसका निवारण कैसे किया जा सकेगा ऐसा प्राप्ति विरोधी का ज्ञान होना अर्थपञ्चक कहा जाता है । शास्त्रों में कहा है-अर्थपञ्चक तत्त्व का ज्ञानी, पञ्चसंस्कारों से संस्कृत आकारत्रय यानी अनन्यशरणत्वं अनन्य भोग्यत्व तथा अनन्य शेषत्व से सम्पन्न जो हैं वे ही श्रेष्ठ भगवद् भक्त हैं । ताप पुण्ड्र नाम मन्त्र एवं माला ये पञ्चसंस्कार श्रीवैष्णवों के लिये विहित हैं । उन संस्कारों से संस्कृत इसप्रकार के गुणों से परिपूर्ण एवं विरक्त दीक्षा से दीक्षित जो महापुरुष हैं वे ही आचार्य पदको अलंकृत कर सकते हैं ॥४॥

समस्त ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति स्थिति एवं पालन के नियमन कर्ता सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की सेवा भावना से ही समस्त सांसारिक कार्य कलाप का सम्पादन करनेवाला, उदाहरण प्रत्युदाहरण सहित तत्त्व विवेचनात्मक उद्बोधन में दक्ष आचार्य लक्षण प्रसंग में जगदाचार्य श्री ने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में उपदेश दिया है कि-इन्द्रिय संयमी पवित्र शास्त्र सम्मत शुद्धवेष एवं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न सदाचार परायण नम्र सभी शास्त्रों का ज्ञाता तथा सदुपदेश में कुशल ही आचार्य के योग्य होता है । गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी कहे हैं कि-जो कुछ सांसारिक क्रिया करते हो, देहस्वभाव वश का जो कुछ भोजन करते हो या देवताओं के उद्देश्य से त्याग करते हो और पाप ताप निवारनार्थ तपस्यायें करते हो, हे अर्जुन वे सभी मुझे समर्पित करो, इसप्रकार शुभ अशुभ कर्म बन्धनों से तुम मुक्त हो जाओगे । प्राणी मात्र के दुःखों के समानानुभूति मूलक करुणा के आगार सम्प्रदाय एवं शास्त्रों में विहित सदाचार से सम्पन्न, अभ्यागत दीन हीन एवं भूखों का सभी तरह से संरक्षण करनेवाला, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एवं पूर्वाचार्य के प्रिय साधु पुरुषों की सेवा करनेवाला पुरुष आचार्य पद पर समासीन होने योग्य है अर्थात् ऐसा

यः शिष्यस्वान्तभवतापनिवारणाय विज्ञानवारिपरिपूर्णविरक्तिदाता ।
सीतापतेः श्रवणमङ्गलनामधेय मन्त्रोपदेशनपटुर्गदितः स्म देष्टा ॥६॥
स्वसम्प्रदायसकलाप्तपरम्पराया वेत्ता सुवैष्णवजनो रघुनाथभक्तः ।
पुण्ड्रोर्ध्वदामतुलसीधररामकर्मा प्राचार्यपीठपदभाजनतां गतोऽसौ ॥७॥
मन्त्रार्थबोधनपटुर्मनुतारकाख्यजप्ता कृती सरलवाक् कुलशीलसम्पत् ।
सन्देहवारणकरः सुयशोऽभिरामः स्वाचारपालनपरः खलु देशिकः स्यात् ॥८॥

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव ही आचार्य हो सकता है ॥५॥

और जो विद्वान् आचार्य उपदेश देने योग्य शिष्यों के अन्तःकरण में होनेवाले सांसारिक दुःख स्वरूप ताप का निवारण करने के लिये आत्म परमात्म विषयक ज्ञान रूप जल से परिपूर्ण भगवद् विषयक परमानुराग रूप विरक्ति का प्रदान करनेवाला, यहाँ दुःख में ताप का आरोप एवं विज्ञान में जल का आरोप होने से सांगः रूपक अलङ्कार है। श्रीजानकीवल्लभ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के जो सुनने मात्र से भी समस्त अमङ्गलों का निवारण करनेवाला है ऐसा नाम से युक्त षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का उपदेश करने में कुशल ही सम्प्रदायाचार्य पद के योग्य होता है ऐसा शास्त्रों में सुव्यक्त रूपसे कहा गया है ॥६॥

जो व्यक्ति किसी कामनामय लोभवश किसी भी परिस्थिति में मिथ्या प्रतिपादन नहीं करता है, उसे आप्त पुरुष अर्थात् वक्ता कहते हैं, आरम्भकाल से लेकर वर्तमान तक श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के समस्त आप्त पुरुषों की वैदिक परम्परा का विशेष ज्ञान रखनेवाला, सुव्यवस्थित श्रीवैष्णव सर्वेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी का परमभक्त सदैव ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक एवं 'यज्ञोपवीत वद्धार्या सदा तुलसी मलिका। क्षणार्धं तद्विहीनो यो विष्णुद्रोहिभवेन्नरः' इस शास्त्र वचनानुसार सदा श्रीतुलसी काष्ठ निर्मित माला को विधान के अनुसार धारण करनेवाला, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा भावना से ही समस्त सांसारिक कर्म कलाप सम्पादन करनेवाला व्यक्ति अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा परम श्रेष्ठ श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यपीठ के सिंहासन पर समासीन होने की योग्यता का निर्वाह करता है। ऐसे व्यक्ति को आचार्य बनाना चाहिये अन्य अल्पश्रुत अल्प पठित या आचार्य परम्परा ज्ञान विधुर तथा सांम्प्रदायिक मर्यादाहीन को नहीं ॥७॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी के शरणागतिमन्त्र द्वयमन्त्र तारकमन्त्र आदि महत्वपूर्ण मन्त्रों

वेदोक्तकर्मसकलाश्रमधर्मदेष्टा श्रीरामकर्मगुणनीतिप्रचारकारी ।
चापादिपञ्चविधशस्त्रसमङ्किताङ्गः रामप्रियप्रियकरः खलु देशिकः स्यात् ॥९॥

प्रसङ्गाद्धेयाचार्यविषयेश्रुतिः-

"अथ हैनं नारदः पितामहं पप्रच्छ भगवन् केन सन्यासाधिकारी वेत्येवमादौ सन्यासाधिकारिणं निरूप्य पश्चात्सन्यासविधिरुच्यते । अवहितः श्रृणु ? अथ षण्डः पतितोऽङ्गविसलः स्त्रैणो वधिरोऽर्भकोमूकः पाषण्डश्चक्री

के अभिप्राय को समझाने में दक्ष, ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का जप करनेवाला, जप के विषय में भगवान् मनु का कथन है कि-विधान पूर्वक किये जानेवाले यज्ञों की अपेक्षा दश गुणा फल अधिक देनेवाला जप यज्ञ होता है, उपांसु जप का फल सौ गुना अधिक है तथा मानस जप का हजार गुना अधिक फल कहा गया है । प्रशंसनीय कर्तव्य करनेवाला, सन्देह मुक्त सीधी सादीभाषा बोलनेवाला कुलीनता एवं सुशीलता का संरक्षक समान रूप से परस्पर दो पक्षों के साथ जुडनेवाला अर्थ सन्देह युक्त होता है । जिज्ञासा वश आये हुए लोगों के सन्देह निवारण में तत्पर अच्छी कृति एवं प्रतिष्ठा के कारण सभी के सुखकारी श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर प्रभृति शास्त्रों में वताये अनुसार अपने सम्प्रदाय के आचरणों का पालन करनेवाला, उपदेशक पीठ के आचार्य पदका योग्य है ॥८॥

समस्त वेद विहित कर्मों का तथा ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रमों के धर्मों का उपदेश देनेवाला, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के जो वेदशास्त्र पुराणों में प्रशंसनीय कर्म कहे गये हैं, तथा उनकी जो दया दाक्षिण्य वात्सल्य औदार्य आदि गुण तथा नीतियों का प्रचार-प्रसार करनेवाला, एवं धनुष वाण आदि पञ्चविध भगवत् आयुधों से विधिपूर्वक चिन्हित है अवयव कलाप जिनका, समस्त शास्त्र विहित कार्य कलाप का सम्पादन करने के कारण जो भगवान् के प्रिय हैं उनके अभिष्ट कर्मों का सम्पादन करनेवाला महापुरुष श्रीसम्प्रदायाचार्य के पद पर आसीन होने योग्य है ॥९॥

सदाचार्य निरूपण के वाद हेय-त्याग करने योग्य आचार्य क्रम प्राप्त होता है उसके विषय में श्रुति कहती है जो श्रीनारदजी एवं श्रीब्रह्माजी के सम्वाद रूपमें प्रस्तुत है-श्रीनारदजी ने पितामह श्रीब्रह्माजी से पूछा हे पितामह संन्यास का अधिकारी कौन है ? इसका निरूपण पहले करके पश्चात् संन्यास का विधान निरूपण करें श्रीपिता-

लिङ्गीवैखानसहरद्विजौभृतकाध्यापकः शिपिविष्टोऽनग्निको वैराग्यवन्तोऽप्येते न सन्यासार्हाः संन्यस्ता यद्यपि महावाक्योपदेशे नाधिकारिणः । षण्डोऽथ विकलोऽप्यन्धो बालकश्चापि पातकी । (नारदपरिव्राजकोपनिषद् ३।१-२)

तथाचानन्दभाष्यकारश्रीचरणाः श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे-

महजी ने कहा सावधान होकर सुनो-षण्ड-नपुंसक पतित-स्वधर्म भ्रष्ट अङ्ग विकल-आँख कान नाक हाथ पैर आदि से रहित स्त्रैण-स्त्री में समासक्त उसे साथ रखनेवाला बहरा बालक मूक पाखण्डी चक्री लिङ्गी वैखानस तथा हरद्विज और वेतन लेकर पढानेवाला एवं कोढी आहिताग्नि रहित जो हैं ये सब वैराग्य वाले हो तो भी संन्यासी विरक्त श्रीवैष्णव होने के योग्य नहीं हैं । यदि जैसे तैसे शास्त्र मर्यादा रहित होकर संन्यास ग्रहण करलें-विरक्त श्रीवैष्णवी दीक्षा लेले तो भी महावाक्य-मोक्ष प्रतिपादक वेदवाक्य-उपनिषद् या वेदमूलक श्रीमद्रामायणादि के उपदेश के अधिकारी नहीं हो सकते हैं । एवं षण्ड-नपुंसक अन्धा अंगविकल या विक्षिप्त पातकी तथा बालक विरक्त श्रीवैष्णवीय दीक्षा के योग्य नहीं होते ।

इस विषय को प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारजी ने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर के ४।५-६ श्लोकों द्वारा स्फुटित किया है-जो अङ्ग विकल हो तथा अधिक अङ्गवाला हो कपट माया करनेवाला मायावी हो जिसका दांत काला हो नेत्र रोग से दूषित अर्थात् अक्ष्णाकाण-अन्ध हो द्वाविंशति भेद भिन्न कुष्ट रोगादि संक्रामक रोगवाला हो तथा निरर्थक अधिक वोलनेवाला वावदूक हो वामन कद में छोटा हो गांजा बीडी वगैरह व्यसनवान् हो प्रमाण में अधिक निद्राशील हो जिसका नख सडा हुआ हो और अधिक भोजन करनेवाला हो क्योंकि "अस्वर्ग्य लोकविशिष्टम्" इत्यादि मनु शास्त्र वचन से बहुभोजन का निषेध है । मुमुक्षुओं को मोक्ष साधन का उपदेश देने के लिये ऐसा-पूर्व वर्णित लक्षणवाला आचार्य-गुरु योग्य नहीं होता है ।

जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य वेदान्तकेसरीजी ने भी आचार्यस्मृति में कहा है-

लोक व्यवहार में प्रशस्त रूपमें देखे जानेवाले अङ्गों से अधिक अङ्ग वाला तथा न्यून अङ्गवाला यानी आँख हाथ तथा पैर या कान नाक के कमती-हीन-रहित अङ्ग वाला अथवा लूला लंगडा-काण-खंज जिसका शरीर है ऐसा व्यक्ति विरक्त-संन्यासी दीक्षा लेने का अधिकारी या सम्प्रदायाचार्य पद या महन्त पद पर आसीन

"हीनाङ्गो ह्यधिकाङ्गश्च कपटीकृष्णदन्तवान् ।
नेत्ररोगी च कुष्टी च वावदूकश्च वामनः ॥
व्यसनी बहुनिद्रश्च कुनखी बहुभोजनः ।
नेदृशोदेशिको योग्योमुमुक्षोर्मोक्षसाधने ॥" (४।५-६)

तथैव जगद्विजयिनो महामहोपाध्यायजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यवेदान्तकेसरीश्रीचरणाः आचार्यस्मृतौ-

"नैवाधिकाङ्गसहितो न च व्यङ्गदेहो नाचारहीन विविधाश्रमदत्तचित्तः ।
नोलम्पटो न च कदाचरणानुरक्तः स्वाचार्यध्रुङ् न च नहि प्रमदानुरक्तः ॥"
(२।१०) ॥५॥

♆ तप्तधनुर्वाण मुद्राधारणसंस्कारविधिः ♆

सम्पादितनित्यक्रियं पूर्ववर्णितगुणसम्पन्नं गुरुं विहितमुण्डनादिशौचं शुद्धासने उपवेश्य पञ्चगव्येन शुद्धमृत्तिकया च बहिरन्तः शुद्धिं विधाय, तद्विधिर्यथा-

होने का योग्य नहीं होता है। सदाचार से विहीन तथा गृहस्थ आदि विविध आश्रमों में मन लगाने वाला अर्थात् जहाँ पर अधिक सुख सुविधा मिलेगी उसी आश्रम में रहेंगे ऐसा विचारवाला भी विरक्त दीक्षा-संन्यास दीक्षा व आचार्य पद के योग्य नहीं होता है। लंपट तथा निन्दित आचार विचार वाला व्यक्ति आचार्य पद पर आसीन नहीं हो सकता है। अपने आचार्य या पूर्वाचार्यों से द्रोह करनेवाला तथा स्त्री में आसक्त चित्तवाला भी आचार्य पद पर आसीन नहीं हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त दोषों से जो व्यक्ति शून्य है वही विरक्त-संन्यास दीक्षा लेसकता है तथा आचार्य पद पर अभिषिक्त भी होने योग्य है ॥५॥

♆ तप्त धनुर्वाणमुद्राधारण संस्कार विधि ♆

पूर्व क्रम में वर्णित गुण गण से गुरु को जिन्हों ने नित्य क्रियाओं को सम्पन्न करलिये हैं तथा मुण्डन आदि शौच करलिये हैं उन्हें शुद्ध आसन पर बैठाकर पञ्चगव्य से तथा मृत्तिका से बाहरी एवं आन्तरिक शुद्धि करके शुद्धि का विधान जैसे कि वनों में जो औषधियों के रसों को आगे के भागों को चरती है ऐसे गायों का गोवर आदि शरीर को शुद्ध करने के लिये परम पवित्र है। अतः हे गोमय मेरे रोग शोक एवं पापों को दूर करो। पञ्चगव्य की मात्रा विधान इसप्रकार है कि गोवर के दुगुणा गोमूत्र

अग्रमग्रेचरन्तीनामौषधीनां रसं वने ।

तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम् ॥

तन्मे रोगांश्च लोकाश्च पापांश्च हर गोमय ।

शकृद् द्विगुणगोमूत्रं सर्पिदद्याच्चतुर्गुणम् ।

क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥

तत्र तारकश्रीराममन्त्रं मनसा उच्चार्य्य पञ्चगव्यपानं विधेयम् । शिष्यस्य कृते तु गुरुः उच्चारयेत् ।

ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

इति मन्त्रेण गोमूत्रं हृह्णीयात् ।

ॐगन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिर्णाम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहो पह्वये श्रियम् ॥ इति गोमयं मिश्रयेत् ।

ॐआप्यायस्व समेतु मे विश्वतः सोम वृष्ण्यंभवाजस्य सङ्गथे । इति दुग्धम् ।

ॐदधिक्राब्णोऽकारिषं जिष्णोरश्वस्य त्वाजिनः ।

सुरभिनो मुखाकरत्प्रणऽआयूंषितारिषत् ॥ अनेन दधि ।

ॐतेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि ज्योतिरसि देवो वः सविता पुनात्वच्छिद्रेण पशोः सूर्यस्य रश्मिभिः । इति मन्त्रेणधृतं मिश्रयेत् ।

हो तथा गोमूत्र से चार गुणा घृत आठ गुणा दूध, एवं आठ गुणा दही डालने पर पञ्चगव्य होता है। पञ्चगव्य पान क्रिया में गुरु तारक मन्त्र का मन ही मन उच्चारण कराकर शिष्य को पञ्चगव्य पान करावें। क्योंकि दीक्षित नहीं होने के कारण शिष्य के बदले गुरु को उच्चारण करना उचित है। शेष मन्त्र शिष्य के मुख से पढाजाना चाहिये। गायत्री मन्त्र से गोमूत्र ग्रहण करना चाहिये एवं 'ॐगन्ध द्वारां...इस मन्त्र से गोवर लेना चाहिये ॐआप्यायस्व समेतु मे...इस मन्त्र से दूध लेना चाहिये तथा दधि क्राब्णोऽकारिषम्....से दधि एवं तेजोऽसि शुक्रमस्य...इस मन्त्र से घृत का मिश्रण करना चाहिये तथा देवस्य त्वा सवितुः...इस मन्त्र द्वारा कुश सहित जल से पञ्चगव्य को प्रोक्षित करे। जैसा कि बोधायनस्मृति में कहा गया है कि-गायत्री से गोमूत्र, गन्धद्वारां...से गोवर, आप्यायस्व-से दूध, दधिक्राब्णो...से दधि तेजोऽसि शुक्रमस्य...से घृत एवं देवस्य त्वा...से कुशोदक लेना चाहिये। तत्पश्चात् श्रीराममन्त्र से संस्कृत पञ्चगव्य को अपनी इच्छानुसार मात्रा में शिष्य पान करे। तत्पश्चात् आगे कहे जानेवाले

ॐदेवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहूभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । इति मन्त्रेण कुशोदकेन सम्प्रोक्ष्य उक्तञ्च बोधायनस्मृतौ-

गायत्र्याचैव गोमूत्रं गन्धद्वारेऽति गोमयम् ।
आप्यायस्वेतिक्षीरं वै दधिक्रावेति वै दधिम् ॥

तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वा कुशोदकम् ॥

ततः श्रीराममन्त्रसंस्कृतम्पञ्चगव्यं यथेष्टं पिवेत् ।

ततः वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण मृदालिप्तः शुद्धे जले तीर्थे वा स्नानं कुर्यात् ।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
शिरसा धारिते देवि रक्षस्व मां पदे-पदे ॥

ॐउद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥

त्वया हृतेन पापेन जीवामि शरदः शतम् ॥
ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पूनन्तु माम् ।

यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वा दुश्चरितं मम ।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहँस्वाहा ॥

मन्त्रों के द्वारा मृत्तिका से उपलिप्त होकर पवित्र जल अथवा तीर्थ जल में स्नान करे। मृत्तिका लेपन करने का मन्त्र अश्वक्रान्ते...एवं उद्धृतासि वराहेण...शिष्य द्वारा पढाजाना चाहिये तथा आपः पुनन्तु...यह मन्त्र स्नान के लिये पढाजाना चाहिये। इसके वाद गुरु अच्छी तरह से संस्कृत मङ्गलकारी वेदी पर विधान पूर्वक पार्षद भ्रातृगण एवं श्रीसीताजी के सहित भगवान् श्रीरामजी को एवं श्रीरामभक्तों को स्थापित करके और श्रीराम भक्तों में प्रधान रूपसे पवनतनय श्रीहनुमानजी को स्थापित करके श्रद्धा पूर्वक स्थापित देवताओं को पुरुषसूक्त के द्वारा षोडशोपचार राजोपचार अथवा अन्योपचार से पूजा करके एवं षडक्षर श्रीराममन्त्र द्वारा श्रीसीताजी सहित श्रीरामजी की विधिवत् पूजा करके सभी को प्रणाम करे। तत्पश्चात् "साकेताय" इत्यादि मन्त्रों से साकेत लोक भगवत्पार्षद आयुध परिवार तथा सम्प्रदायाचार्यों को प्रणाम करे। पुनः आगे कहे जानेवाले आपोहिष्ठा आदि मन्त्रों से शिष्य को प्रोक्षित करे। नमोभगवते रघुनन्दनाय इस मन्त्र से भी प्रत्येक खण्ड द्वारा शिष्य का प्रोक्षण करके तत्पश्चात् शान्ति पाठ करे।

ततः गुरुः सुसंस्कृतायां शुभायां वेद्यां विधानपूर्वकं पार्षदैः, भ्रातृभिः श्रीसीतया च सहितं श्रीरामं श्रीरामभक्तांश्च स्थापयित्वा श्रद्धापूर्वकं स्थापितान् पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारेण राजोपचारेण वा पूजयित्वा षडक्षरेण श्रीराममन्त्रेण श्रीसीतया सहितं श्रीरामं सम्पूज्य प्रणमेत्। ततः

ॐश्रीसाकेताय भगवन्नित्याय नमोनमः

ॐ श्रीहनुमदादि भगवत्पार्षदेभ्यो नमः

ॐ श्रीशार्ङ्गादि भगवदायुधेभ्यो नमः

ॐ श्रीभगवत्परिवाराय नमोनमः

ॐ ब्रह्मावशिष्ठ पराशर व्यास शुक बोधायन रामानन्दाचार्यादि आत्मगुरुपर्यन्तं सर्वेभ्यः स्व सम्प्रदाय पूर्वाचार्येभ्यो नमोनमः। इति पूर्वाचार्यान् प्रणम्य वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणाचार्यः शिष्यशरीरं कुशोदकेन प्रोक्षयेत्।

ॐ आपो हिष्ठामयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे। यो वः शिवतमोरसः। तस्य भाजयते हनः। ऊशतीरिव मातरः। तस्मा अरङ्गमामवो। यस्य क्षयाय जिन्वथ आपो जन यथा च नः। ॐभूर्भुवः स्वरोम्। ॐनमो भगवते रघुनन्दनाय। रक्षोघ्न विशदाय। मधुर प्रसन्नवदनाय। बलाय। रामाय। विष्णवे नमः। ततः शान्ति पाठं कुर्यात्।

हरिः ॐस्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्तिनस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष॒ँशान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व॒ँशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

शान्ति पाठ के पश्चात् श्रीरामाय नमः आदि तीन मन्त्रों से तीन वार आचमन करके एवं श्रीराघवेन्द्राय नमः से हस्त प्रक्षालन करे। पुनः सर्वदा सर्वकार्येषु...से लेकर ब्रह्मेशान जनार्जनाः पर्यन्त मङ्गलपाठ करके हाथ में कुश तिल जल लेकर पञ्चसंस्कर हेतु सङ्कल्प करे। पुनः अलङ्कृत वेदी के ऊपर जो कुङ्कुम चन्दनादि से परिसिञ्चित है उस पर चन्दन के द्वारा षट्कोण बनाकर मध्यभाग में 'रां' यह अग्नि बीज मन्त्र

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। सन्नः कुरुप्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः। सुशान्तिर्भवतु ।

ततः श्रीरामाय नमः । श्रीरामभद्राय नमः । श्रीरामचन्द्राय नमः । इति मन्त्रेण त्रिराचम्य श्रीराघवेन्द्राय नमः इति हस्तं प्रक्षाल्य मङ्गलपाठं कुर्यात् ।

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्जनः ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥
ॐसर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्जनाः ॥

तदनन्तरं सङ्कल्पं कुर्यात्-

हस्ते कुशतिलजलान्यादाय-ॐविष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः-हरिः ॐ तत्सत् अद्य श्रीमद्भगवतोमहापुरुषस्याज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे आर्यावर्ते भरतखण्डे पुण्यक्षेत्रे अमुक नाम सम्बत्सरे अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक नक्षत्रे अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुक नाम्नः शिष्यस्य जन्ममरणादि भवरोगनिवृर्त्यर्थं देवगुरुकृपया सकलदुरितशमनपूर्वकं सर्वेश्वर श्रीससीतरामप्रीत्यर्थं श्रीसीता रामशरणागतिसिद्धये पञ्चसंस्कारान् अहं करिष्ये ।

लिखकर आम्र पीपलादि शुद्ध काष्ठ को इकट्ठा करके उस पर श्रीराममन्त्र से पवित्र अग्नि की स्थापना कर प्रज्वलित अग्नि में यव तिल घृतादि हवनीय द्रव्य से अथवा केवल घृत से श्रीरामजी को उद्देश्य करके पुरुषसूक्त तथा १०८ षडक्षर श्रीराममन्त्र से हवन करे। जैसे कि यह ईश्वर संहिता में कहा गया है मूल मन्त्र द्वारा घृत से १०८

तदनन्तरम्परिष्कृतायां वेद्याङ्कुङ्कुमचन्दनादिभिः परिषिक्तायां चन्दनेन षट्कोणं विधाय मध्ये रां इति वह्नि बीजमुल्लिख्य शुद्धाभिः समिद्भिः पुञ्जीकृते काष्ठे श्रीराममन्त्रेण पवित्रमग्निं स्थापयित्वा प्रज्वलितेऽग्नौ यव तिलघृतादिहवनीयद्रव्यैः आज्येन वा श्रीराममुद्दिश्य पुरुषसूक्तेन अष्टोत्तर शतेन श्रीराममन्त्रेण च जुहुयात्। तदुक्तमीश्वरसंहितायाम्-मूलमन्त्रेण जुहुयाच्छतमष्टोत्तरं घृतैः। वैष्णव्या चैव गायत्र्या तद्विष्णोरिति वै ऋचा। ततः शिष्यमुखेन वक्ष्यमाणं स्तोत्रं पाठयेत्। अग्नौ श्रीरामनामाङ्कितौ धनुर्वाणौ च स्थापयेत्।

प्रेरकं बाणवृन्दानां रामचाप नतोऽस्म्यहम्।
चक्रानन्तपतिं तीक्ष्णं रामवाणमहं भजे॥
रामब्रह्म राजपुत्रहस्तेऽजस्त्रं विराजितौ।
सूर्यानन्तप्रभावन्तौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम्॥
असुराणां घातकौ च सुराणां भयनाशकौ।
निहितेभ्यो मोक्षदौ च धनुर्वाणौ नमाम्यहम्॥
स्व चिह्नबाहुमूलेभ्यः सीतारामांघ्रिभक्तिदौ।
श्रीराममुष्टिशोभाप्तौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम्॥
ध्यातानन्दकरौ दिव्यौ योगिनां ध्यानदुर्लभौ।
नित्यौ रामायुधाख्यौ तौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम्॥
असुरेभ्यो भीतकाभ्यां सुरेभ्यः शरणप्रदौ।
भूमिभारहरावेतौ धनुर्वाणौ नमाम्यहम्॥
श्रीरामवामहस्तस्थ धनुर्धर्माभिपालक।
कामादिनाभिभूतस्य राममार्गं प्रदर्शय॥

आहुति दें। वैष्णवी गायत्री द्वारा अथवा 'तद्विष्णो परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्' इस ऋचा के द्वारा हवन करे। इसके वाद शिष्य के मुख से आगे कहा जानेवाला स्तोत्र का पाठ करावे और अग्नि में श्रीरामनाम से चिह्नित धनुष एवं वाणों को स्थापित करे। ''प्रेरकं वाण वृन्दाणां से लेकर ''राममार्गं प्रदर्शय'' पर्यन्त

श्रीरामसव्य हस्तस्थ शराहितविनाशक ।
सूर्यशतसमांशोर्चिः राममार्गं प्रदर्शय ॥ इति संप्रार्थ्य,
अग्नौ विशुद्धहविषा विविधैः सुगन्धैः,
होमं सुवेद विधिना शरशार्ङ्ग मन्त्रैः ।
अष्टोत्तरं शतमथो जुहुयात्सुभक्त्तो,
रामं स्मरेद्धृदि सदाजनकात्मजाढ्यम् । इत्यादि प्रमाणेन धनुर्मुद्रामादाय गुरुः

धन्वना गा धन्वनाजिंजयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम । धनुः रात्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ इति मन्त्रं पठन् शिष्यस्य वामबाहुमूले धनुर्मुद्रयाङ्कयेत् । ततः बाणद्वयमुद्रामादाय-

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धापतति प्रसूता । यत्रा नरः सं च विच द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्मयंसन् ।

ऋजीते परिवृङ्ग्घिनोऽश्मा भवतु न स्तनू ।
सोमोऽधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्मयच्छतु ॥

आभ्याम्मन्त्राभ्यां शिष्यस्य दक्षिणे बाहुमूले वाणमुद्राभ्यामङ्कयेत् ।
ततः प्रार्थयोत्-

प्रत्यूहव्यूहभङ्गं विदधदुरुबलः शक्तिमान्सर्वकारी,
भूरिश्रेयः प्रतापो मुनिवरनिकरैः स्तूयमानो विमानः ।
रक्षौदैत्यादिनाशी क्षुभितलनिधिर्लोकजिल्लोकमान्यो,
धन्यो नो मङ्गलौघं सपदि सकुरुताद्रामशस्त्रास्त्रसङ्घः॥

श्रीराममुद्राधारणमात्रेणैव मानवाः निर्भयाः भवन्ति ।
यथा-आनन्दरामायणस्य मनोहरकाण्डेलिखितम्-

राममुद्रास्ति यद्देहे तं पापं स्पृशते नहि ।
राममुद्राङ्कितं दृष्ट्वा नरं ते यम किङ्कराः ।
पलायन्ते दशदिशः सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा ॥

स्तोत्र से धनुषवाण की प्रार्थना करने के पश्चात् गुरु धनुष मुद्रा को उठाकर धन्वनामा...इत्यादि मन्त्र को पढता हुआ शिष्य की वामबाहु के मूल में धनुषमुद्रा से चिह्नित करें। तत्पश्चात् दो वाण मुद्राओं को ग्रहण कर सुपर्णवस्ते...ऋजीतं परिवृन्धि...

खिन्नस्य सुकुमारस्य अतिवृद्धस्य बालस्य आतुरस्य च शीतलमुद्रया अङ्कनं विधेयम् । तदुक्तम्-शीतलेनाथ तप्तेन चाङ्कितो रामकिङ्करः ॥ ततः ऊर्ध्वपुण्ड्रेन सम्पन्नं शिष्यं कुर्यात् ॥६॥

॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणविधिः ॥

श्रीसम्प्रदायमनुसृत्य पञ्चसु संस्कारेषु द्वितीय ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणमस्ति । तदुक्तं श्रीसम्प्रदायाचार्यप्रवरेण भगवता श्रीरामानन्दाचार्ययतीन्द्रेण श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे-

इन दो मन्त्रों से शिष्य की दक्षिण बाहुमूल में दो वाण मुद्राओं से अङ्कित करे। तत्पश्चात् प्रत्यूहव्यूह भङ्गम्...इत्यादि मन्त्रों को पढकर तापमुद्रा को सम्पन्न करे एवं इसके माहात्म्य से शिष्य को अवगत करावे तत्पश्चात् आगे कहे जानेवाले विधि विधान से शिष्य के ललाट में गुरु ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करे ॥६॥

॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण विधान ॥

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय परम्परानुसार पाँच संस्कारों में दूसरा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण संस्कार कहा गया है। यही वात श्रीसम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्रीमान् यतिराज श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज द्वारा श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर नामक ग्रन्थ में कहा गया है-तपाया गया धनुष एवं वाणों से दोनों भुजाओं के मूल में विधिवत् अङ्कन कर ताप संस्कार विधिवत् सम्पन्नकर एवं ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारणकर, वेदोक्त भगवत् सम्बद्ध नामकरण कर मन्त्र एवं माला संस्कार किये जाने के पश्चात् मनुष्य सदैव परमपुरुषार्थ मोक्ष की कारणता को धारित करता है ।

सनत् कुमार संहिता में भी कहा गया है-आचार्य शिष्य को तप्तमुद्राङ्कन संस्कार करने के पश्चात् विशुद्ध श्रीरामचरणरज श्वेत मृत्तिका से ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करावे। पहले सिंहासन बनाकर उसके ऊपर भगवत् चरणाकृति बनाकर दो ऊर्ध्व रेखा अङ्कित करे। मध्य भाग में हल्दी से परिष्कृत कृपा मूर्ति जगज्जननी जानकी स्वरूप मानकर श्री जी को स्थापित करे। आथर्वणिक श्रुति में उल्लिखित किया गया है-भगवद् भक्त श्रीवैष्णव अपना परम कल्याण के लिये मध्य भाग में जिसमें छिद्र है ऐसी भगवत् चरणाकृति की रेखा वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह अन्य मानवों को प्रिय होता है । वह पुण्य भाजन होता है । वह मुक्ति भाजन होता है । श्रीरामचरणरज श्वेत मिट्टी एवं हल्दी से ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे इस विषय में स्मृति

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः ॥

सनत्कुमारसंहितायां चोक्तम्-

ललाटे तिलकं दद्यादूर्ध्वञ्च स्वच्छमृणमयम्
सिंहासनोपरिश्रेष्ठं द्विरेखाञ्चरणाकृतिम् ॥
स्थापयेज्जानकीरूपां तन्मध्ये श्रीहरिद्रजाम् ॥

तथाचाथर्वणीयाश्रुतिः-

हरेः पादाकृतिमात्मनो हितायमध्येच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति । स पुण्यभाग् भवति स मुक्तिभाग् भवति । मृदा हरिद्रयाचोर्ध्व पुण्ड्रं कुर्यादत्र विषये स्मृतिचन्द्रिकादिषु विशेषेणाभिहितम् तस्यायम भिप्रायः । विशेषजिज्ञासुभिस्ते ग्रन्था अवलोकनीयाः । भागवतेषु पवित्र-
चन्द्रिका आदि ग्रन्थों में विशेष रूपसे निरूपण किया गया है। उसका अधोनिर्दिष्ट अभिप्राय है। यदि किन्हीं महानुभावों को विशेष जानने की इच्छा हो तो उन ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। भगवत् सम्बन्धी क्षेत्रों में जो पहाडों के शिखर पर नदी किनारे अथवा समुद्र के तटपर तुलसी के मूल में या वल्मीक के ऊपरी भाग में जो अतिशय पवित्र मृत्तिकायें हों उनका ही तिलक के लिये संग्रह करना चाहिये। अन्य मृत्तिकायें संग्रहीत नहीं करनी चाहिये। उन मृत्तिकाओं में रंग के अनुसार धारण करने का फल भी अलग अलग होते हैं। श्याम मृत्तिका शान्ति कारिणी होती है। लाल मृत्तिका वशीकरण जनक होती है। पीला रंग की लक्ष्मी सम्बर्धक होती है। और श्वेत मृत्तिका श्रीवैष्णवों के लिये उपयुक्त कही गयी है। मृत्तिका के अनुसार ही तिलकों के गुण होते हैं। अतः श्रीवैष्णवों को भगवदाश्रित होने के कारण अन्य कोई कामना होती नहीं है और वे निष्काम होते हैं। अत एव श्वेत मृत्तिका से ही तिलक धारण किया जाना चाहिये। तिलक धारण करने में अङ्गुलियों का भी विशेष फल निर्देश किया गया है वह जैसे कि अंगुष्ठाङ्गुलि पुष्टि प्रदानकारी है, मध्यभाग अङ्गुली आयुष वर्धक होती है, अनामिका अन्न प्रदान कारिणी होती है तथा प्रदेशिनी अङ्गुली मोक्ष प्रदान करनेवाली कही जाती है। भिन्न भिन्न फल होने के कारण इन विभिन्न अङ्गुलियों में अपनी अभिलाषा को दृष्टिगत कर तिलक धारण करना चाहिये।

क्षेत्रेषु ये पर्वताग्रे नदीतटे सागरतीरे वा तुलसीमूले वल्भीकाग्रे वा या पवित्रतमा मृत्तिकाः ता एव संग्राह्याः, नान्याः तासु मृत्तिकासु वर्णक्रमेण फलानि भिन्नानि भवन्ति। श्यामा शान्तिकारिणी, रक्ता वश्यकरी पीता लक्ष्मीसम्बर्धिका श्वेता च वैष्णवीकीर्त्यते। मृत्तिकानुसारेणैव तिलकगुणाः भवन्ति। तस्मात् श्रीवैष्णवैः भगवदाश्रितत्वात् निष्कामत्वाच्च श्रीराम चरणरजश्वेतमृत्तिकयैव तिलकधारणं विधेयम्। तिलकधारणे विशेषतोऽङ्गुलीनामपि फलानि निर्दिष्टानि, तद्यथा अंगुष्ठः पुष्टिप्रदः, मध्यमा आयुष्करी, अनामिका अन्नदा प्रदेशिनी च मोक्षा कीर्त्यते। एभिरङ्गुलिभेदैः स्वेच्छामनुरुध्यनखस्पर्शं परित्यजन् जपे होमे पूजाकाले निमित्तमन्तराऽपि सायं प्रातः समहितमनाः सन् भगवन्नामोच्चारणं मूलमन्त्रोच्चारणं वा विधाय तिलकधारणं विधेयम्। तिलकस्य चौन्नत्यञ्चतुरङ्गुलम् द्व्यङ्गुलं च विस्तारो भवेत्। मध्यभागे हरिद्रया परिष्कृतं रक्तवर्णं श्रियं श्रीरामचरणरजं वा धारयेत्। श्रीचूर्णधारणस्य श्रीकरत्वं विजयप्रदत्वं पुण्यजनकत्वं सर्वदोष प्रणाशकत्वं चात्रिस्मृतावुक्तम्।

इसमें विशेष रूपसे यह ध्यान रखना चाहिये कि तिलक धारण करते समय उस अङ्गुली के नख का ललाट से स्पर्श नहीं हो अर्थात् नख से विना स्पर्श कराये, जप होम देव पूजन काल में कोई विशेष निमित्त नहीं होने पर भी सायं प्रातः एकाग्रचित्त होकर भगवान् सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का नामोच्चार अथवा मूल मन्त्रोच्चारण पूर्वक तिलक धारण करे। तिलक की ललाट में ऊँचाई चार अङ्गुल प्रमाण तथा विस्तार दो अङ्गुल होना चाहिये। तिलक के मध्यभाग में हल्दी से परिष्कृत लाल रंग की श्री अथवा श्रीरामजी के श्रीचरणरज को धारण करना चाहिये श्रीचूर्ण के धारण करने का फल लक्ष्मी प्रदान करना, विजय प्रदान पुण्यजनक, तथा सभी प्रकार के दोषों का निवारण करना है ऐसा अत्रिस्मृति में कहा गया है।

पूर्व में वर्णित शास्त्रीय प्रमाण सिद्ध वचनों तथा अपनी गुरु परम्परा (सम्प्रदाय परम्परा) का अनुसरण करके शिष्य के ललाट में षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र अथवा श्रीरामनाम का उच्चारण करते हुये श्वेत रंग की मिट्टी से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की आकृति वाला आचार्य तिलक करें। दोनों ऊर्ध्वपुण्ड्र चरणाकृति के

पूर्वोक्तानि शास्त्रवचनानि स्वसम्प्रदायपरम्पराञ्चानुरुध्य शिष्यस्य भाले श्रीराममन्त्रं मनसा समुच्चारयन् श्रीरामनामवोच्चारयन् श्वेतमृत्तिकया भगवच्चरणाकृतिं ससिंहासनं तिलकं कुर्यात् द्वयोरन्तराले रमणीयाकृतिं श्रीचुर्णेन श्रीरामचरणरजसा वा तिलकं कुर्यात् । दीक्षाकालं परित्यज्यस्मिन् समये सति सामर्थ्ये स्वयमेव तिलकधारणं कुर्यात् । वामहस्तेन तिलक धारणस्य निषेधान् मुमुक्षुभिः प्रदेशिनी अङ्गुलिरेवोपयोगयोग्यः । ऊर्ध्वपुण्ड्र मध्येऽक्षतादि द्रव्यधारणं न कर्तव्यम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणोत्तरं नामकरणसंस्का रोविधेयः ॥७॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणविषये विशेषविधिः श्रीवाल्मीकिसंहितायाः चतुर्थाध्याये उक्ताः तद्यथाः-

मध्यभाग में श्रीचूर्ण या श्रीरामचरणरज से सुन्दर आकृति वाला श्री स्वरूप तिलक करें। दीक्षा समय छोडकर अन्य किसी भी समय में दूसरों के हाथ तिलक धारण नहीं किया जाना चाहिये । यदि विमारी आदि के कारण असामर्थ्य हो तो विवशता की स्थिति में दूसरे के हाथों से भी तिलक धारण अवश्य करना चाहिये । विना कण्ठी तिलक के श्रीवैष्णवों को कभी भी नहीं रहना चाहिये । वायाँ हाथ के द्वारा तिलक धारण का निषेध किया गया है। अत एव मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों को प्रदेशिनी अङ्गुलि ही तिलक धारण में उपयोग करने योग्य है । इस वात का ध्यान रखना चाहिये कि ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्यभाग में अक्षत् आदि कोई अन्य द्रव्य श्रीवैष्णवों को नहीं लगाना चाहिये । ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण के पश्चात् नामकरण संस्कार शिष्य का गुरु के द्वारा किया जाना चाहिये ॥७॥

विष्णु भक्ति परायण श्रीवैष्णवों के द्वारा सदैव ऊर्ध्वपुण्ड्र किया जाना चाहिये ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण नहीं करने पर पतितपना को प्रासकर रौरव नामक नरक में जाता है। रैवतक चित्रकूट और यादवाद्रि से श्रीवैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने के लिये मृत्तिका का आहरण करें । अथवा गङ्गा नदी से यमुना नदी से अथवा सरयु नदी से मृत्तिका लाकर परम मङ्गलकारी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे जो धर्म का सभी प्रकार से संरक्षण करनेवाले हैं वे सदैव धारण करें । श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवगण पहले सिंहासन करें तत्पश्चात् दो भागों में भगवत् चरण के आकार वाला दो ऊर्ध्वपुण्ड्र श्वेत मिट्टी से करें, इसके वाद दोनों चरणाकार के मध्यभाग में सुन्दर श्री जी को लिखें यानी हरिद्रा से

ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदाकार्यं विष्णुभक्तिपरायणैः ।
पातित्यमन्यथा प्राप्य रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

रैवतकाच्चित्रकूटाद्यादवाद्रेश्च वैष्णवाः ।
मृत्तिकाऽऽहरणं कुर्युरुर्ध्वपुण्ड्राय सर्वदा ॥

गङ्गायाः सूर्यकन्यायाः सरय्वाद्यामृदासदा ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं शुभं कुर्युर्वैष्णवा धर्मरक्षकाः ॥

पूर्वं सिंहासनं कुर्युः ततः पार्श्वद्वयं पुनः ।
ततः पश्चाच्च तन्मध्येलिखेयुः सुन्दरीश्रियम् ॥

रजन्या श्रियमालिख्य मृदावापि च शुक्लया ।
वैष्णवो मुक्तिमाप्नोति सर्वकल्मषवर्जितः ॥८॥

घृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमेशितारं, नारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम् ।
स्मृत्वा विमुच्येत नरः समस्तैः संसारपासैरिह चैव विष्णुः ॥९॥

॥ नामकरण संस्कारविधिः ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणसंस्कारानन्तरं शिष्यस्य नामकरणसंस्कारं गुरुः कुर्यात्, विषयेस्मिन् सनत्कुमारसंहितायामुक्तम्-

परिस्कृत लाल रंग की रोली से श्री को लिखकर अथवा शुक्ल मृत्तिका से श्री अपने ललाट में धारण कर श्रीवैष्णवजन नित्य पार्षदत्व स्वरूप मोक्ष को उपलब्ध करते हैं। तथा जन्म जन्मान्तर से सञ्चित सभी तरह के पापों से विमुक्त हो जाते हैं। श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय परम्परा में केवल श्री का धारण करना निषिद्ध कहा गया है। अत एव सफेद रंग के ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करके ही श्री करें ॥८॥

जिसने ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किया है, वह ज्ञानयोग से जानने योग्य सकलभुवन नियामक मानव मात्र की परमगति श्रीरामजी को स्मरण कर समस्त संसार बन्धन से मुक्त होकर विष्णु स्वरूप हो जाता है ॥९॥

॥ नामकरण संस्कार विधि ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण संस्कार करने के पश्चात् गुरु शिष्य का नामकरण संस्कार करें। इस विषय में सनत् कुमार संहिता में कहा गया है। पुनः आचार्य अपने शिष्य को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम से सम्बन्धित नाम वोले या वुलावें। जो व्यक्ति

शिष्यन्तु रामसम्बद्ध नाम्ना वै प्रवदेत् पुनः ।
भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते ।
त एव ह्री महापापी चाण्डालाः स्युर्नसंशयः । इति वृद्धहारीतस्मृतावुक्तम् ।
यस्यार्थं विश्व आर्योदासः ॥ इति वेदेचाभिहितम् ।
पारासरस्मृतावपि-
योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम्
तस्मात् पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ।

श्रीरामानन्दीयानां श्रीवैष्णवानां नामकरणसंस्कारविषयेश्रुतिस्मृति पुराणादिषु विस्तरेण प्रतिपादितः सिद्धान्तः, तस्य संक्षेपेणेहाभिप्रायो निरुप्यते । सिद्धान्तमिममनुसरन्नेवाचार्यैर्नामकरणसंस्कारोविधेयः । यशस्यं देवतासम्बद्धं नक्षत्राश्रयं माङ्गल्यजनकं श्रीवैष्णवानां नामकरणं विधेयम् । यस्य नामपूर्ववर्णितगुणानुरूपं नास्ति स अनामकः सर्वकर्मसुगर्हितश्चो च्यते । शक्त्यावेशावतारादिनामपि नाम न कार्यम् । यथा कादीदासः, परशुरामदासः महादेवदास हीरादास प्रभृतयो न कार्या । विष्णुगुणसम्बन्धीनि अपने आप को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष स्वरूप नहीं मानता है, उसके विरुद्ध व्यवहार करता है, वे महान् पापी हैं और चाण्डाल होते हैं इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है । जिसका यह समस्त आर्यगण दास है, ऐसा वेद में भी कहा गया है। पराशर स्मृति में भी नामकरण के सम्बन्ध में कहा गया है-भगवन्नाम पूर्वक अर्थात् जिसके पूर्व भाग में भगवान् का नाम हो एवं अन्त में दास शब्द जुडा हो ऐसे दास्यभाव की योजना करके नामकरण करना चाहिये । ऐसा करने से जन्म जन्मान्तर के समस्त पाप नष्ट होते हैं एवं मनुष्य पुण्य भाजन बनता है ।

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों का नामकरण संस्कार के विषय में वेद धर्मशास्त्र तथा पुराण आदि में विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया गया है । यहां पर उस सिद्धान्त का संक्षेप में निरूपण किया जाता है । अतः इस सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए ही आचार्यों के द्वारा नामकरण संस्कार किया जाना चाहिये । कीर्तिजनक देवता के नामसे जुडा हुआ एवं जन्म नक्षत्र पर आधारित मङ्गलकारी नामकरण श्रीवैष्णवों का होना चाहिये जिस श्रीवैष्णंव का नाम पूर्व वर्णित गुणों के अनुरूप नहीं है, वह व्यक्ति

पापनाशकानि नामानि तु कर्तव्यानि । आचार्यपरम्परानुगुणितानि राघवानन्द रामानन्दानन्तानन्दादीनि दासान्तानि नामानि कर्तुं शक्यन्ते । इत्थं श्रुतिस्मृति सम्बद्धानि प्रपत्तिसूचकानि नामानि शिष्याणां विधेयानि येषां वैष्णवसम्प्रदायपरम्परानुगुणानि नामानि न क्रियन्ते ते चाण्डालता मनुव्रजन्ति । इत्थं वक्ष्यमाणं वचनं शिष्यमुखेनोच्चारयित्वा नामकरणं विधेयम्

अद्यप्रभृति श्रीराम ? तवदासोऽस्मि सर्वथा ।
दासान्तं नामगृह्णामि प्रसीदकरुणालय ॥

उक्तञ्च श्रीमद्रामायणे भागवते च-

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासोभवितास्मिभूयः, दासोऽहंकोशलेन्द्रस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः' तेन-नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्योन शूद्रो नो वा वर्णी न च गृहपतिर्नोवनस्थो यतिर्वा । किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्द पूर्णामृताब्धेः सीताभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥१०॥

अनामक (जिसका नाम ही नहीं है) और सभी कर्मों में निन्दित कहा जाता है । शक्ति के आवेश एवं अंशावतार आदि का भी नामकरण नहीं किया जाना चाहिये जैसे कालीदास, परशुरामदास, महादेवदास, हीरादास आदि नाम नहीं करना चाहिये । भगवान् विष्णु के गुणों से सम्बन्धित पापों का नाश करनेवाले नाम तो करना चाहिये। आचार्य परम्परा के अनुकूल गुण वाले राघवानन्द दास, रामानन्द दास, अनन्तानन्द दास आदि नाम किये जा सकते हैं । इसप्रकार वेद एवं धर्मशास्त्र से सम्बद्ध शरणागति सूचक नाम श्रीवैष्णवों का किया जाना चाहिये जिसका नाम श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के परम्परानुसार उसके अनुरूप गुणवाले नहीं किये जाते हैं वे चाण्डालत्व को प्राप्त करते हैं । इस वात में किसी प्रकार का संदेह नहीं । इसप्रकार पूर्व वर्णित विषयों का विवेचन कर आगे कहा जानेवाला मन्त्र का शिष्य के मुख से उच्चारण करते हुये, नामकरण संस्कार किया जाना चाहिये । हे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आज से आरम्भ कर मैं आपका सभी तरह से दास हूँ। अत एव दास अन्तवाला नाम स्वीकार करता हूँ । हे करुणानिधान आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।

इस वात को भागवत और श्रीमद्रामायण में कहा गया है-हे भगवान् विष्णु मैं आपके चरणकमलों के सेवकों की परम्परा का अन्तिम सेवक (दास) पुनः पुनः

॥ तुलसीमालाधारणविधिः ॥

पूर्ववर्णितं संस्कारत्रयं विधाय, आचार्यस्वशिष्यं दार्ढ्येन सम्यक् बोधयेत्, यत् अद्यारभ्य अहं प्रभोः श्रीरामचन्द्रस्य दासोऽस्मि मदीयं चेदं नाम इति । ततः-

"मालां च दद्यात् तुलसीसमुद्भवाम्" इति-श्रीवैष्णवमताब्जभास्करोक्तं

"तुलसीमालिका सूक्ष्मा कण्ठलग्ना द्विधाकृती ।
दद्यात्तां क्षणमात्रोऽपि शिष्यो नैव त्यजेत् पुनः ॥"

इति सनत्कुमार संहिता वचनम् ।

"वैष्णवैः सततं धार्या श्रीतुलसीद्वियष्टिका ।
तां त्यजन् पुरुषो मूढो भ्रष्टसंस्कार एव हि ॥"

बनूँ। मैं श्रीकोशलाधीश अक्लीष्ट कर्मकारी श्रीरामचन्द्रजी का दास हूँ। अत एव कहा जाता है मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, और राजा भी नहीं वैश्य अथवा शूद्र नहीं हूँ। ब्रह्मचारी नहीं हूं, अथवा गृहस्थ, वानप्रस्थी या संन्यासी भी नहीं हूं । किन्तु उत्कृष्ट मात्रा में उदीयमान समस्त पूर्ण परमानन्द से भरा हुआ अमृत का सागर स्वरूप श्रीसीतानाथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दासों के दास का भी दास हूँ ॥१०॥

॥ तुलसी माला धारण संस्कार विधान ॥

इससे पूर्व वर्णन किये गये ताप पुण्ड्र नाम संस्कार करके आचार्य अपने शिष्य को दृढता के साथ अच्छी तरह समझावे कि आज से प्रारम्भकर हे प्रभो श्रीराम ? मैं आपका दास हूं, और यह मेरा नाम है । इसके वाद "गुरु तुलसी काष्ठ विरचित माला से अपने शिष्य को अलंकृत कर शास्त्रीय विधान पूर्वक षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र का उपदेश करे ।" इस श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर के वचन और "दोलर वाली कण्ठ से सटी हुई पतली तुलसी की माला शिष्य को गुरु प्रदान करें । एवं शिष्य उस माला का कभी भी परित्याग नहीं करें ।" इस सनत्कुमार संहिता के वचन एवं "दोलर वाली श्रीतुलसी की माला श्रीवैष्णवों के द्वारा सदैव धारण किया जाना चाहिये । उस माला का परित्याग करनेवाला विवेक रहित पुरुष संस्कार भ्रष्ट होता है । इस श्रीवाल्मीकि संहिता के वचन का विचार करके चौथा माला प्रदान नामक संस्कार गुरु करें । क्योंकि तुलसी, निखिल ब्रह्माण्ड नायक एवं तिलक स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के लिये जनकतनया श्रीसीताजी के समान प्रिय है । एवं समस्त दृश्य

इति श्रीवाल्मीकिसंहिता वचनं च विमृश्य तुरीयं मालासंस्कारं गुरुः कुर्यात् । यतो हि तुलसीसकलब्रह्माण्डतिलकस्य श्रीरामचन्द्रस्य जनकात्मजेव प्रिया सर्वलोकपाविनीचेति अगस्त्यसंहितायां गरुडपुराणेचोक्तम् । तदुक्तं-

''विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा ।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलौकैकपाविनी ॥ अ. सं. ।
क्षालितां पञ्चगव्येन मूलमन्त्रेण मन्त्रिताम् ।
गायत्र्याचाष्टकृत्वा वै मन्त्रितां धूपितां च ताम् ॥
विधिवत्परयाभक्त्या सद्योजातेन पूजयेत् ।
सन्निवेद्यैव हरये तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ॥
मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ।
मालां धत्ते स्वयं मूढः स याति नरकं ध्रुवम् ॥'' ग. पु.

जगत को पावन करनेवाली है'' इस विषय में अगस्त संहिता और गरुड पुराण में भी कहा गया है-''तीनों लोकों के नायक भगवान् विष्णु-श्रीरामजी के लिये जनकतनया श्रीसीताजी जिस तरह प्रिय हैं उसी तरह सर्वलोक को पवित्र करनेवाली एक मात्र तुलसी प्रिय है ।-अ.सं.। पञ्चगव्य के द्वारा प्रक्षालित ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र से अभिमन्त्रित आठ वार गायत्री मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित और धूप से सुसंस्कृत तुलसी माला को पराभक्ति द्वारा विधिवत् सद्योजात मन्त्र से पूजित करे । तथा सम्यक् प्रकार से भगवान् श्रीरामजी को तुलसी काष्ठ से विरचित माला समर्पित कर तत्पश्चात् अपने कण्ठ में धारण करता है वही उत्तम भागवत है । जो व्यक्ति तुलसी माला भगवान् को समर्पित नहीं करता है । एवं स्वयं पहन लेता है । वह अविवेकी है एवं निश्चित रूपसे नरक गामी है । ग.पु. । अतः तुलसी काष्ठ विरचित माला का धारण श्रीवैष्णवों के द्वारा अवश्य ही किया जाना चाहिये । वह श्रीवैष्णव विधान पूर्वक तुलसी की कण्ठी पहनने से ही भगवान् को प्राप्त करता है । एवं पुण्यवान् होता है। उस तुलसी माला का किसी भी परिस्थिति में परित्याग नहीं किया जाना चाहिये । यह स्कन्द पुराण में कहा गया है, जैसे कि-श्रीवैष्णवों के द्वारा कण्ठ में तुलसीमाला यज्ञोपवीत के समान नियमित रूपसे पहना जाना चाहिये तुलसी माला धारण से व्यक्ति की या माला की कभी भी अपवित्रता नहीं होती है क्योंकि तुलसी ब्रह्म स्वरूपिणी कही गयी है ।

तुलसीकाष्ठमालाधारणं श्रीवैष्णवैः अवश्यमेव विधेयम् । स तुलसीधारणमात्रेण भगवन्तं प्राप्नोति पुण्यवांश्च भवति । तस्याः मालिकायाः कदापि त्यागो न विधेया । तदुक्तं स्कन्दपुराणे-

"यज्ञोपवीतवद्धार्या कण्ठे तुलसीमालिका ।
नाऽशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ॥"

तुलसीमालिका धारणकाले गुरुः वक्ष्यमाणं मन्त्रं पठन् शिष्यस्य कण्ठे सूक्ष्मां द्वियष्टिकां श्लक्ष्णां रमणीयां मालिकां धारयेत् ।

"यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्या विष्णुजनप्रिया ।
तथैनं कुरु कल्याणि ! शिष्यं विष्णुजनप्रियम् ॥"

ततः शिष्यमुखेन मन्त्रमिमं पाठयेत्-

"तुलसीकाष्ठसम्भूते ! माले विष्णुजनप्रिये ।
विभर्मित्वामहं कण्ठे कुरु मां रामवल्लभम् ॥"

तापपुण्ड्रनाममालासंस्कारसम्पादनानन्तरं गुरुः मन्त्रोपदेशं कुर्यात् अन्यथा गुरुः नरकगामि भवति । इति सम्प्रदायसिद्धान्तः तस्मात् दृढतापूर्वकं चतुरः संस्कारान् विधाय एव मन्त्रोपदेशो विधेयः । तेन गुरोः शिष्यस्य च मर्यादासंरक्षणं भवति ॥११॥

तुलसी माला पहनने के समय में गुरु आगे पढा जानेवाला मन्त्र को पढते हुए शिष्य के कण्ठ में पतली दोलर वाली चिकनी और सुन्दर माला को पहनावें । हे तुलसी माला ! जिस तरह आप भगवान् श्रीरामजी के नित्य प्रिय हैं तथा भागवतों के प्रिय हैं । उसी प्रकार इस मेरे शिष्य को हे कल्याणी ! भागवतों का प्रिय बनाओं । तत्पश्चात् शिष्य के मुख से आचार्य इस मन्त्र को पढावें तुलसी के काष्ठ से उत्पन्न भागवतों के प्रिय हे तुलसी माला ! आपको मैं कण्ठ में धारण करता हूँ । मुझे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का प्रिय बनावें । ताप, पुण्ड्र, नाम, माला इन चार संस्कारों को सम्पन्न करलेने के पश्चात् ही गुरु मन्त्र का उपदेश करें । इसके विपरीत आचरण करने पर गुरु नरक गामी होता है, ऐसा सम्प्रदाय का सिद्धान्त है । इसिलिये दृढता पूर्वक चारों संस्कारों को सम्पन्न करके ही मन्त्रोपदेश किया जाना चाहिये । इससे गुरु एवं शिष्य दोनों की मर्यादा का परिपालन होता है ॥११॥

॥ मन्त्रसंस्कारविधिः ॥

राज्यं दद्याद्धनं दद्यात् प्राणान् दद्यात् कदापि वा ।
न दद्यात् भक्तिहीनाय मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥ सदाशिव संहिता ।
श्रीराम तारकं मन्त्रं कर्णे च श्रावयेद् गुरुः । सनत्कुमार संहिता ।

इत्यनुरुध्यनारदपञ्चरात्रोक्तदिशा पूर्वाभिमुखोपविष्टस्य शिष्यस्योत्तराभिमुखोपविष्टो गुरुः शुभे दक्षिणे कर्णे त्रिवारं षडक्षरं ब्रह्मतारकं श्रीराममहामन्त्रं श्रावयेत् । तं च सावधानमनाः शिष्यः दृढतया सम्यक् स्मरेत् । अगस्त्य संहितायान्तु अष्टोत्तरशताधारमुच्चारणमुक्तम् । तद्यथा-

॥ मन्त्र संस्कार विधान ॥

भले ही राज्य दे दें, धन दे दें, अथवा कदाचित् प्राण भी दे दें, लेकिन मर्यादापुरुषोत्तम निखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रति श्रद्धा भक्ति विहीन पुरुष को ब्रह्म तारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र का उपदेश प्रदान नहीं करें। इसका अभिप्राय यह है कि पात्रापात्र का अच्छी तरह विचार करने के पश्चात् ही पञ्चसंस्कार प्रदान विधि प्रारम्भ करें। ऐसा सदाशिव संहिता में कहा गया है। सनत् कुमार संहिता में भी कहा गया है कि-गुरु अपने शिष्य के कान में ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का उपदेश करें। अर्थात् मन्त्र की पूर्ण गोपनीयता बनी रहनी चाहिये, अन्यथा गोपनीयता नष्ट हो जाने से मन्त्र का महत्व एवं शीघ्र फलदायित्व के विषय में सन्देह उपस्थिति सम्भावना बन जायगी। क्योंकि अपात्र भी मन्त्र को सुनकर मजाक उडायेगा। इन विषयों का विचारकर नारद पञ्चरात्र के कथनानुसार पूर्वदिशा की ओर मुख करके वैठा हुआ शिष्य के उत्तर दिशा की ओर मुख करके वैठे हुए आचार्य कल्याणकारी मङ्गलमय दाहिना कान में तीन वार ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र का उपदेश करें। और उसको सावधानचित्त होकर शिष्य को पक्का अभ्यास हो जाये ऐसे सम्यक् प्रकार से याद रक्खे। अगस्त्य संहिता में तो एक सौ आठ वार उच्चारण करने का विधान कहा गया है। वह जैसे कि-हे मुनिवर ! इसके वाद गुरु संस्कार सम्पन्न शिष्य के माथा पर अपना दाहिना हाथ रखकर एक सौ आठ वार मन्त्र को धीरे धीरे बोले एवं हाथ में जल रखकर सङ्कल्प पूर्वक प्रसन्नचित्त होकर अपने शिष्य के लिये प्रदान करें। गुरु स्वभावतः ज्योतिर्मयी विद्या को शिष्याभिमुख जा रही हो ऐसी भावना करें। एव

"ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्तं दत्वाशतं जपेत् ।
अष्टोत्तरं ततो मन्त्रं दद्यादुदकपूर्वकम् ॥
प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्याय मुनिपुङ्गव ।
स्वतो ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद् गुरुः ।
आगतां भावयेच्छिष्योधन्योऽस्मीति विशेषतः ।
कृतकृत्यस्ततः शिष्यस्तस्मै सर्वं निवेदयेत् ।
यच्च यावच्च यद् भक्त्या गुरवे हृष्टचेतनः ॥ अगस्त्यसंहिता ॥
उपासकस्तु श्रद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत् ।
स्वचित्त वित्तकायैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥
यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदं भुवम् ।
स्वयमेव तथा चैवमिति कर्तव्यताक्रमः ॥
पूर्वं दद्याद् गुरुस्तस्मै मूलमन्त्रं षडक्षरम् ।
ततश्च चरमं दद्यादुपदेशक्रमात्सदा ॥"

शिष्य ज्योतिर्मयी विद्या अपनी ओर आ रही है, मेरा अहो भाग्य है, मैं विशेष रूपसे धन्य हूँ इस तरह की भावना करें, तत्पश्चात् कृतकृत्य होकर अपने गुरु को सवकुछ समर्पण करदें। प्रसन्नचित्त होकर जो हो जितना हो जैसी श्रद्धा भक्ति हो निवेदन करें।

श्रद्धा सम्पन्न उपासक तो प्रयास पूर्वक अपने गुरु को सन्तुष्ट करें। प्रसन्न गुरु जिसतरह सन्तुष्ट होकर समस्त अभीष्ट पूर्ण करनेवाला मन्त्र प्रदान करते हैं, तदनुसार अपने मन धन काया से श्रद्धा भक्ति पूर्ण होकर स्वयं ही गुरु को प्रदान करें। यह परस्पर कर्तव्यता का क्रम है। आचार्य अपने शिष्य को मूलमन्त्र प्रदान करे। तत्पश्चात् द्वयमन्त्र एवं शरणागति मन्त्र प्रदान करें। क्रम का ध्यान रखकर मन्त्रोपदेश करना चाहिये। पद्मपुराण के वचनानुसार मूलमन्त्र प्रदान करने के पश्चात् द्वय मन्त्र का उपदेश एवं तत्पश्चात् चरम मन्त्र अर्थात् शरणागति मन्त्र का उपदेश करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का अभिप्राय भी शिष्य को समझावें। केवल मन्त्रोपदेश मात्र से ही कोई गुरु वास्तविक गुरु नहीं बन जाते हैं। अथवा मन्त्रार्थ का वाचन करने मात्र से भी वस्तुतः गुरु नहीं ब्रनते हैं। लेकिन उस मन्त्र का रहस्यभूत तात्पर्य का बोध कराने के वाद ही गुरु वास्तविक गुरु सच्चा गुरु कहलाते हैं। इन मन्त्रों का उपदेश करने के पश्चात्

पद्मपुराणोक्तवचनमनुसृत्य तु मूलमन्त्रप्रदानानन्तरं द्वयमन्त्रस्योपदेशो विधेयः। ततः चरममन्त्रस्योपदेशोविधेयः। मन्त्राभिप्रायं च शिष्यं बोधयेत्। केवलं मन्त्रोपदेशमात्रेण मन्त्रार्थवाचनेन वा गुरुर्न भवति। किन्तु मन्त्रतत्व बोधनेनैव गुरुः भवति। तत्पश्चात् श्रीरामगायत्री, श्रीलक्ष्मण भरतशत्रुघ्न हनुमतां मन्त्राः उपदेष्टव्याः। श्रीराममन्त्रेण सह श्रीसीतामन्त्रस्यापि उपदेशो विधेयः। श्रीराममन्त्रेण दीक्षितः शिष्यः मन्त्रान्तरान् परित्यजेत् अन्यथा नरक गामी भवति। तदुक्तं नारदपञ्चरात्रे पुष्करसंहितायां च तौ क्रमेण कथ्येते-

''लब्ध्वा षडक्षरं मन्त्रं रामस्य परमात्मनः।
मन्त्रान्तरान्प्रयत्नेन वर्जयेन्मन्त्रतत्त्ववित् ॥''

''गृहीत्वा वैष्णवात्सम्यङ् मन्त्रराजं षडक्षरम्।
अन्यमन्त्रं जिघृक्षेच्चेद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥''

आचार्य श्रीराम गायत्री, श्रीलक्ष्मण श्रीभरत श्रीशत्रुघ्न और श्रीहनुमन् मन्त्रो का उपदेश करें। श्रीराम मन्त्र के साथ साथ श्रीसीता मन्त्र का भी उपदेश करना चाहिये। श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में श्रीरामाभिन्न श्रीसीताजी एवं श्रीसीताजी से अभिन्न सर्वेश्वर श्रीरामजी को अभीष्टतया स्वीकार किया गया है। अतः श्रीसीता मन्त्र के विना श्रीराम मन्त्र अपूर्ण माना गया है। दूसरी वात यह है कि जो शिष्य एक वार श्रीराममहामन्त्र से दीक्षित हो चुका है, वह अन्य देवता के मन्त्र का परित्याग करे अन्यथा नरक गामी होता है। यह विषय नारदपञ्चरात्र एवं पुष्कर संहिता में कहा गया है। उनका क्रमशः उल्लेख किया जाता है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी परमात्मा के ब्रह्मतारक षडक्षर मन्त्र को उपलब्ध कर अन्य मन्त्रों का पूर्ण प्रयास पूर्वक परित्याग करना चाहिये यह मन्त्र तत्त्व ज्ञानी को ध्यान रखना चाहिये। षडक्षर मन्त्रराज को श्रीवैष्णव गुरु से सम्यक् प्रकार धारणकर जो अन्य मन्त्र ग्रहण करने की इच्छा करता है तो वह रौरव नरक में जाता है। पूर्व में संहिता एवं पुराण के वचनों में मन्त्रोपदेश के विषय में तीन वार और एक सौ आठ वार कहा गया है। वह मन्त्रोच्चारण से शिष्य को विशुद्ध अभ्यास हो सके इसमें तात्पर्य है। इसलिये शिष्य के जिस तरह सुदृढ अभ्यास हो उतनी मात्रा पर्यन्त मन्त्र का उपदेश करें। और पञ्चसंस्कार से सुसम्पन्न शिष्य सर्वस्व दक्षिणा से गुरु को

मन्त्रोपदेशे वारत्रयस्य अष्टोत्तरशतवारस्य च उच्चारणस्य मन्त्रस्य विशुद्धाभ्यासे तात्पर्यम् तेन शिष्यस्य यथा सुदृढः अभ्यासः स्यात् तावत् पर्यन्तं मन्त्रोपदेशं कुर्यात् एवं पञ्चसंस्कारैः सुसम्पन्नः शिष्यः सर्वस्व दक्षिणया गुरुं संतोष्य प्रार्थयेत् भगवन्तं श्रीरामचन्द्रम् ।

"तवास्मि जानकीकान्त ? कर्मणा मनसा गिरा ।

रमाकान्त ? तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥

मत् समोनास्ति पापात्मा त्वत्समोनास्ति पापहा ।

इति सञ्चिन्त्यदेवेश ? रक्ष मां शरणागतम् ॥

अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम् ।

देहि मे कृपया राम ? त्वयि भक्तिमचञ्चलाम् ॥

एवं दीक्षासम्पन्नः श्रीवैष्णवः स्वसामर्थ्यमनुसरन् यथाशक्तिप्रतिदिनं सम्प्रदायानुसारं मन्त्रान् जपेत् ।

जगद्‌गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यकृतौ

श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां पञ्चसंस्काराः सम्पन्नाः ॥१२॥

सन्तुष्टकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रार्थना करे । हे जानकी कान्त ? भगवान् श्रीराम ? कर्म मन एवं वचन से आपका शरणागत हो जाऊँ हे रमाकान्त ? आप दोनों सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी ही मुझ शरणागत की परमगति हैं । मुझ जैसा पापाचरणकारी कोई दूसरा नहीं है । एवं आप दोनों जैसा पाप से उद्धार करनेवाला अन्य नहीं है। हे देवेश इन वातों का सम्यक् प्रकार से विचार कर मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये। विना किसी कष्ट की मृत्यु हो एवं दीनता से रहित जीवन हो । हे भगवान् श्रीरामजी और मुझे कृपा पूर्वक आपके प्रति सुस्थिर भक्ति प्रदान करें ।

पूर्वोक्त प्रकार से दीक्षा सम्पन्न श्रीवैष्णव अपने सामर्थ्य का अनुशरण करते हुये यथाशक्ति प्रतिदिन अपनी गुरु परम्परा के अनुसार मन्त्रों का जप करें ।

इसप्रकार जगद्‌गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वारानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में पञ्चसंस्कार विधि सम्पन्न हुआ ॥१२॥

☫ त्रिदण्डनिर्माणविधिः-धारणविधिश्च ☫

प्रयागजातं द्विजवंशरत्नं त्रिदण्डिमुख्यं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम् ।
यतीश्वरं राघवशिष्यमुख्यं रामं मुनिं नित्यमहं नमामि ॥

मेखलाजिनदण्डाद्यैर्ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ।
गृहस्थो यष्टिवेदाद्यैर्नखरोमाद् वनाश्रमी ॥

त्रिदण्डेन यतिश्चेति लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥ इति दक्षः । अङ्गिरास्मृतौ तु-

यतेलिङ्गं प्रवक्ष्यामि येनासौ लक्ष्यते यतिः ।
ब्रह्मसूत्रं त्रिदण्डं च वस्त्रं जन्तु निवारणम् ॥

शिक्यं पात्रं बृशी चैव कौपीनं कटिवस्त्रकम् ।
यस्यैतद् विद्यते लिङ्गं स यतिर्नेतरो यतिः ॥ लिखितेतु-

☫ त्रिदण्ड निर्माण विधि एवं धारण विधि ☫

ब्राह्मण कूलभूषण प्रयाग क्षेत्र में जन्म धारण करनेवाले त्रिदण्डधारी संन्यासियों में प्रधान जिनका ऊर्ध्वपुण्ड्र देदीप्यमान था यतिराज श्रीमान् राघवानन्दाचार्यजी के प्रमुख शिष्य भगवान् श्रीरामजी का धर्म संरक्षण हेतु धारित अवतार आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज को मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूं ।

मेखला मृगचर्म तथा दण्ड आदि लक्षणों से यह ब्रह्मचारी है यह परिलक्षित होता है । दण्ड एवं वेदशास्त्र आदि धारण करने से यह गृहस्थ है ऐसा बोध होता है । नख, केश आदि से वानप्रस्थाश्रयी है यह परिलक्षित होता है तथा त्रिदण्ड धारण करने से श्रीवैष्णव संन्यासी है, इसप्रकार भिन्न-भिन्न लक्षणों से अलग-अलग आश्रमों का परिज्ञान होता है । यह दक्षस्मृति का वचन है । अङ्गिरा स्मृति में तो कहा है कि संन्यासी का चिह्न विस्तृत रूपसे कहुंगा । जिससे यह संन्यासी लक्षित होता है । यज्ञोपवीत और त्रिदण्ड जन्तुओं से रक्षा हेतु वस्त्र झोली एवं वृषि कौपीन तथा कटिवस्त्र ये सभी चिह्न जिसमें हैं वह श्रीवैष्णव संन्यासी है, अन्य संन्यासी नहीं है । लिखित स्मृति में तो संन्यासी कषाय रंग से रंगा हुआ, कपास का बना हुआ वस्त्र और कंथा (विशेष प्रकार का वस्त्र) को धारण करें अथवा वल्कल, मृग-चर्म, रेशमी वस्त्र या सण से बना हुआ वस्त्र शिक्य आवरण के सहित पात्र जो तीन प्रकार से ढका हुआ हो । बंधा हुआ पवित्र जल, त्रिदण्ड, गोलाकार आसन, शिखा यज्ञोपवीत

काषायमेव कार्पासं वासः कन्थां च धारयेत् ।
वल्कलं वाऽजिनं वापि कौशं शणमयं तु वा ॥
शिक्यं सकवचं पात्रं त्रिविष्टब्धेन संयुतम् ।
बद्धं जलपवित्रेण त्रिदण्डं वर्तुलासनम् ॥
शिखां यज्ञोपवीतं च शौचार्थमपि कुण्डिकाम् ।
सर्वदा धारयेद् गच्छन्नासीनो वापि वा शुचिः। विष्णुस्मृतौच-
उपवीतं त्रिदण्डं च पात्रं जलपवित्रकम् ।
कौपीनं कटिवस्त्रं च न त्याज्यं यावदायुषम् ॥

एवमादिभिर्धर्मशास्त्रवचोभिः संन्यासिभिः त्रिदण्डादीनां धारणं परमावश्यकम् । यतिधर्मत्वात् प्रथमं यज्ञोपवीतलक्षणमभिधाय, त्रिदण्ड लक्षणमभिधीयते । विषयेऽस्मिन् दत्तात्रेयात्री आहतुः ।

तन्तुत्रयमधोवृत्तं पुनश्चोर्ध्वं त्रिवृत्तवत् ।
कार्पासं तान्तवं कार्यं तथैकं चोत्तरीयकम् ॥

तथा शौच के लिये पुण्डि को सदैव धारण करे। कहीं आवागमन करता हुआ अथवा पीठ–मठ–आश्रम में स्थित किसी भी स्थिति में हो पवित्र रहकर इन साधनों को धारण करें। और विष्णुस्मृति में कहा है यज्ञोपवीत त्रिदण्ड और जल से पवित्र पात्र कौपीन और कटिवस्त्र को जब तक जीवन रहे तब तक कभी भी त्यागना नहीं चाहिये । इत्यादि धर्मशास्त्रीय वचनों से यह सिद्ध होता है कि संन्यासियों के द्वारा त्रिदण्ड आदि का धारण किया जाना परम आवश्यक है। संन्यासियों का धार्मिक कर्तव्य होने के कारण पहले यज्ञोपवीत का लक्षण कहकर त्रिदण्ड लक्षण कहा जाता है। इस विषय में दत्तात्रेय एवं अत्रि कहते हैं कि यज्ञोपवीत निर्माण में नीचे की ओर बँटा हुआ तीन सूत्र हो पुनः त्रिसूत्रि को तीनवार मोडकर ऊपर की ओर बँटा हुआ हो। इस तरह कपास निर्मित सूत का यज्ञोपवीत बनाया जाना चाहिये तथा एक उत्तरीय हो अधोवर्तित तीन सूत्रों से तिवाडा ऊपर की ओर बँटा हुआ कपास सूत से बना हुआ, नौ तन्तुओं वाला बाह्य ब्रह्मसूत्र कहा जाता है। नौ सूत्रों का संग्रह ब्राह्मणों के लिये मोक्षका साधन है। विना यज्ञोपवीत से तत्काल सभी धर्मों से बहिष्कृत हो जाता है।

इन धर्मशास्त्रों में दण्डलक्षण के प्रसंग में महर्षि कपिल के द्वारा कहा गया

अधोवृत्तैस्त्रिभिस्सूत्रैः त्रिभिरुर्ध्वं त्रिवृत्कृतम् ।
ब्रह्मसूत्रं स्मृतं ब्राह्मं कार्पासं नवतान्तवम् ॥
संग्रहो नवसूत्रस्य द्विजानां मुक्तिसाधनम् ।
विना तेन भवेत् सद्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

तत्र दण्डलक्षणप्रकरणे कपिलेनोक्तम्-

अङ्गुलिप्रमाणमृजुमूर्ध्वायतं वैणवं दण्डं दण्डान् वा धारयेत् आत्मसम्मितं वा । अङ्कुरा यत्र दृश्यन्ते शुभाः पत्रविनिः सृताः । तत्र पर्वं विजानीयात् शेषं मध्यमिहोच्यते ॥ त्रिपञ्चसप्तनवकं पर्वचैकादशं तथा ॥ वर्जितो दण्ड इत्याहुर्यतेः सर्वत्र तस्य च । दत्तात्रेयस्तु-त्रिदण्डानङ्गुलिस्थूलान् वैणवानूर्ध्वसम्मितान् । सत्वचानव्रणान् सौम्यान् समसन्नतपर्वकान् । षडष्टदशपर्वाणो योनिहीनांश्च निर्व्रणान् ॥ दक्षस्तु-केशमात्रान् समग्रन्थीन् त्रिदण्डान् वैणवान् यतिः धारयेत् । इति आह । हारीतमते तु त्रिदण्डं पञ्चधाविभज्य तस्य त्रिभागादूर्ध्वं कृष्णगोबालरज्वा चतुरङ्गुलं वेष्टयेत् । ग्रन्थिधारात्रयेण सम्पन्नं जलेन पवित्रं विधाय गुरुणा प्रदत्तं त्रिदण्डं दक्षिण

है कि अंगुली प्रमाण से मोटाई वाला, ऊपर की ओर विस्तृत बाँस का बना हुआ दण्ड अथवा दण्डों को धारण करें । जो दण्डधारण करनेवाला व्यक्ति की लम्बाई से सन्तुलित हो जिस बाँस में अंकुर दिखाई देता है तथा मङ्गलकारी पत्र विशेष रूपसे निकला हुआ है उसे दण्ड में पर्व (गाँठ) समझना चाहिये । शेषभाग को इस शास्त्र में मध्यभाग कहा जाता है । तीन, पाँच, सात, नौ तथा ग्यारह पर्व वाला दण्ड निषिद्ध है ऐसा कहा गया है जो उस संन्यासी के लिये सर्वत्र वर्जित है ।

दत्तात्रेय के सिद्धान्त में तो कहा गया है कि अंगुली के बराबर मोटाई वाला बाँस से बना हुआ अपनी ऊँचाई से मापा गया छिलका के सहित छिद्र आदि दोष से रहित समान एवं झुका हुआ गाँठ वाला छः, आठ अथवा दश गाँठ वाला व्रण से रहित अच्छी जाति का दण्ड को धारण करे । दक्षस्मृतिकार तो कहते हैं कि दण्डधारक के शरीर के केश पर्यन्त लम्बाई वाला सम संख्या की गाँठ से युक्त बाँस से बना हुआ तीन दण्डों को संन्यासी धारण करें । हारीतस्मृति के सिद्धान्त में तो कहा गया है कि त्रिदण्ड की लम्बाई को पाँच भागों में विभाजित कर उसके तीन हिस्सा से

हस्तेन धारयेत् । वृद्धदक्षमतेन त्रिदण्डस्य मूले मध्ये अन्ते च सूत्रेणैव वेष्टयेत् संन्यासी त्रिदण्डं पञ्चधाविभक्तं पुनः विधाय, तस्याग्रभागे ब्रह्माणं, द्वितीयेपुरुषात्मानं तृतीयेविश्वात्मानं चतुर्थे निवृत्तिपुरुषं पञ्चमे च भागे सर्वात्मानं ध्यायेत् । समग्रं त्रिदण्डं सर्वेश्वरं श्रीरामरूपं विचिन्तयेत् तदुक्तं हारीतेन-विष्णुरूपं त्रिदण्डाख्यं सर्वथा धारयेद् यतिः । तं च स्वयमेव धारयेत् तदुक्तम्-ब्रह्मसूत्रं त्रिदण्डञ्च शिववद् बिभृयात् स्वयम् । बाह्येदितरेणाथ प्रायश्चित्तीभवेद् यतिः । पुरुषसूक्तेन विष्णुसूक्तेन वा अभिषेचयेत् । आवश्यके नित्यकर्मसम्पादनकाले उपदण्डेन बन्धयेत् । पूर्ववचने दण्डं दण्डान् वा धारयेदित्युक्तम् । किन्तु एकदण्डापेक्षया त्रिदण्डधारणमेव परमश्रेयस्करं सम्प्रदायाभिमतञ्च । विषयेऽस्मिन् भगवान् व्यास आह-

ऊपर कृष्णगोबाल की डोरी से चार अंगुल पर्यन्त लपेट दें । गाँठ की तीन धाराओं से युक्तकर जल द्वारा पवित्र करके आचार्य द्वारा दिया गया त्रिदण्ड को दाहिना हाथ से धारण करें । वृद्ध दक्षस्मृति के सिद्धान्तानुसार तो त्रिदण्ड के मूलभाग, मध्यभाग, तथा अन्तभाग में सूत के द्वारा ही परिवेष्टन करे । पाँच भागों में त्रिदण्ड को संन्यासी व्यक्ति विभाजित करके पुनः उस त्रिदण्ड के अग्रभाग में ब्रह्मा को द्वितीय भाग में पुरुषात्मा को, तृतीय भाग में विश्वात्मा को चतुर्थ भाग में निवृत्ति पुरुष को और पाँचवाँ भाग में सर्वात्मा को चिन्तन करे । अर्थात् पाँच भागों में क्रमशः इन देवताओं का ध्यान करे । तथा समग्र त्रिदण्ड को सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के रूपमें विशेष रूपसे चिन्तन करे । यही बात हारीतस्मृतिकार के द्वारा कही गयी है । त्रिदण्ड नामसे प्रसिद्ध विष्णु स्वरूप को सर्वतोभावेन विरक्त संन्यासी हर प्रकार से हर परिस्थिति में धारण करे । और उस त्रिदण्ड को स्वयं ही धारण करे यही वात प्रामाणिक विद्वानों द्वारा कही गयी है । यज्ञोपवीत, एवं त्रिदण्ड शिखा के समान संन्यासी धारण करे । यदि संन्यासी दूसरे के द्वारा बहन करावें तो संन्यासी प्रायश्चित्ती होता है ।

पुरुषसूक्त के द्वारा अथवा विष्णु सूक्त के द्वारा अर्थात् इन सूक्तों में से किसी एक सूक्त को पढकर त्रिदण्ड का अभिषेक करे । आवश्यक स्नान भोजन आदि नित्यकर्म सम्पादन करने के समय में त्रिदण्ड को उपदण्ड के द्वारा बाँध दे । पूर्व निर्दिष्ट आचार्यों के वचन में कहा गया है कि दण्ड अथवा दण्डों को धारण करे ।

त्रिदण्डधारणं शस्तं तथैकान्तनिषेवणम् ।
लब्ध्वाहारमनायासो यतीनां मुक्तिसाधनम् ॥

कथञ्चित् प्रमादवशात् दण्डेषु नष्टेषु यावद्दण्डानामुपलब्धिर्नभवति तावत् पालाशमेकदण्डं कुशस्तम्बं वा धारयित्वा यतिः विचरेत् । पुनः लब्धे दण्डत्रये यथापूर्वं संस्कृत्य त्रिदण्डं धारयेत् ॥१३॥

卐 श्रीबोधायनस्मृतिमनुसृत्य त्रिदण्डविषयकः सिद्धान्तः प्रस्तूयते 卐

त्रीन्दण्डानङ्गुलिस्थूलान् वैणवान् मूर्धसम्मितान् ।
एकादशनवद्वित्रिचतुः सप्तान्यपर्वकान् ॥
वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्वातु चतुरङ्गुलान् ।
गोवालरहितं चान्यद्धारयेदुपदण्डकम् ॥ हारीतस्तु-

किन्तु एक दण्ड की अपेक्षा त्रिदण्ड धारण करना ही परम कल्याणकारी है तथा सम्प्रदाय परम्परा से सम्मत है। एक दण्ड धारण करें या त्रिदण्ड धारण करें इस विषय में भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी कहते हैं कि त्रिदण्ड का धारण करना अतिशय प्रशंसनीय है एवं एकान्त स्थान का पूर्ण रूप से सेवन करना हल्का भोजन करना, अधिक शारीरिक श्रम न करना यह सव संन्यासियों के लिये मुक्ति प्राप्त करने का साधन है यदि कथञ्चित् अनवधानता आदि के कारण त्रिदण्डों के नष्ट हो जाने पर तो जब तक त्रिदण्ड की उपलब्धि नहीं हो जाती है अर्थात् संस्कार पूर्वक तीनों दण्ड प्राप्त नहीं करलेते हैं तवतक पलाश का बना हुआ एक दण्ड को अथवा दर्भमुष्टि को धारण करके संन्यासी विचरण करे। पुनः तीनों दण्ड को उपलब्ध करलेने के पश्चात् पूर्व दण्ड धारण के अनुरूप संस्कार करके त्रिदण्ड को धारण करे ॥१३॥

बोधायन स्मृति का अनुसरण कर त्रिदण्ड धारण विषयक सिद्धान्त प्रकृत में प्रस्तुत करते हैं-

अंगुली की मोटाई के समान मोटाई वाला बाँस का बना हुआ, मस्तक पर्यन्त मापा ऊँचाई वाला तीन दण्ड रखें। जिनमें ग्यारह, नौ, दो तीन चार और सात गाँठ नहीं हों, अर्थात् इन से भिन्न ग्रन्थिवाले हों। और काली गाय के बालों की डोरी से चार अङ्गुल पर्यन्त वेष्टन हो तथा उन तीन दण्डों के साथ गोवाल के वेष्टन से रहित दूसरा एक उपदण्ड नामक दण्ड को भी धारण करे। और हारीतस्मृति में कहा गया

त्रिदण्डं वैणवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम् ।
वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरङ्गुलम् ॥

भविष्यपुराणे च निरूपितं यथा-

दण्डं तु वैणवं रम्यं सत्वचं समपर्वकम् ।
पुण्यस्थाने समुत्पन्नं नानाकल्माषशोभितम् ॥
अदग्धमहतं कीटैः पर्वग्रन्थिविराजितम् ।
स्वयं भूतं तु मेदिन्यां शाखावर्जमृजुं शुभम् ॥
नाशादघ्नं शिखातुल्यं भ्रुवोर्वाविभृयाद् यतिः ॥

अत्रिस्मृतौ च त्रिदण्डनिर्माणविषयेन्यरूपयत्-

धारयेद् वैणवं दण्डं न स्थूलं न कृशं तथा ।
तस्य चाग्रे च मूले च ग्रन्थीं त्यक्त्वा तु धारयेत् ॥
द्विचत्वारिषडष्टौ वा ह्याङ्गुलानि समाहितः ।
न न्यूनं नातिरिक्तञ्च द्विगुणं मूलतोऽग्रके ॥

है कि चार अङ्गुल के भाग को काली गाय के बालों की रस्सी से परिवेष्टन किया गया हो जिसमें समसंख्यक गाँठ वाला बाँस का बना हुआ दण्ड हो उसे धारण करें। तथा भविष्यपुराण में भी दण्ड के विषय में प्रतिपादन किया गया है वह जैसे कि सुन्दर त्वचा वाला समसंख्यक पोर (ग्रन्थि) वाला बाँस का बना हुआ दण्ड होता है जो पुण्यजनक पवित्र स्थान में उत्पन्न हो तथा जिसे कीट आदि कोई जन्तु दूषित नहीं किया हो जलने आदि से जो दूषित नहीं हो समसंख्यक गाँठ से सुशोभित हो तथा जमीन पर स्वयं ही उत्पन्न हुआ हो शाखाओं से रहित सीधा नाक पर्यन्त लम्बाई वाला अथवा शिखा या भ्रुव पर्यन्त लम्बाई वाला दण्ड को श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें। और अत्रिस्मृति में त्रिदण्ड निर्माण के विषय में निरूपण किया गया है कि जिस दण्ड का मूलभाग से अग्रभाग (अन्तिम छोर) की गाँठ का भाग दुगुणा हो न्यून अथवा अधिक ग्रन्थि वाला नहीं हो दो, चार, आठ, छः अङ्गुल का अन्तर हो आदि तथा अन्त में गाँठ नहीं हो अधिक मोटा या अधिक पतला न हो ऐसा बाँस के बना हुआ दण्डको श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें कनिष्ठिका अङ्गुली के समान मोटाई उत्तम है तर्जनी के सदृश मध्यम है तथा अङ्गुष्ठ के सदृश अधम है । इसप्रकार परम पवित्र

इत्थं परमपवित्रस्थानसमुद्भूतान् दोषरहितान् त्रीन्वेणुदण्डान् अनाय्य केशान्तं, भ्रुवोः पर्यन्तं, नाशापर्यन्तं वा प्रत्येकदण्डं विनिर्माय, त्वचः क्षतिर्यथानस्यात् तथा सुसंस्कृत्य, गङ्गाजलेन तीर्थान्तरजलेन वा प्रक्षालयित्वा, अलावुवेणुकाष्ठादिविरचितान् पात्रांश्चकारयित्वा तांश्च स्वसम्प्रदायपरम्परा मनुसृत्य संन्यासाश्रमोचितानि साधनानि संकल्पय्य, दण्डकमण्डलुभिक्षापात्र शिक्यादीनि पवित्रस्थाने संस्थाप्य । स्वगुरुपरम्परानुसारेण क्षौरादिकं कर्मसमाप्य, सम्पादितनित्यकृत्यः परमविरक्तः मुमुक्षुः आत्मशुद्धिकामः एकं तप्तकृच्छ्रव्रतं कृत्वा, अनाश्रमीचतुरः प्राजापत्यं कृच्छ्रं परिसमाप्य-स्वसम्प्रदायानुरोधेनान्यद् व्रतं वा सम्पादयित्वा दण्डादि धारणात्पूर्वमधिकार सिद्धये, दैवादिकान् अष्टौ श्राद्धानि सम्पादयेत् । तप्तकृच्छ्रप्रजापत्ययोः स्वरूपं यथा स्मृतावुक्तम्-

स्थान में स्वयं पैदा हुये दोषों से शून्य तीन बाँस के दण्डों को मँगवाकर केश पर्यन्त, भ्रुव पर्यन्त, या नासिका पर्यन्त लम्बाई वाला प्रत्येक दण्ड को व्यवस्थित रूपसे बनाकर जिससे उसकी त्वचा आदि दूषित न हो । इसप्रकार अच्छी तरह शास्त्रीय विधान के अनुसार सुसंस्कृत कर गङ्गाजल से अथवा अन्य किसी तीर्थ के जल से प्रक्षालित करके अलाबू, बाँस काष्ठ आदि से बने हुये पात्रों को भी बनवाकर और उन सभी को अपनी आचार्य परम्परा के सम्प्रदाय का अनुसरण करके संन्यासाश्रम के उपयुक्त साधनों को संकलित कर दण्ड कमण्डलु भिक्षापात्र शिक्य आदि को पवित्र स्थान पर विधिवत् रखकर अपनी गुरु परम्परानुसार क्षौर आदि कर्मकलाप सम्पन्न कर स्नानादि नित्यकृत्य पूर्ण करके परम विरक्त मुमुक्षु साधक अपने आपको शुद्ध करने की इच्छा से एक तप्त कृच्छ्र व्रत करके अनाश्रमी व्यक्ति तो चार प्रजापत्य कृच्छ्र व्रत परिपूर्णकर अथवा अपने सम्प्रदाय के अनुसार अन्य कोई व्रत सम्पादित करके दण्ड आदि धारण के पहले अधिकार सिद्धि के लिये दैवादि आठ प्रकार के श्राद्धों को सम्पन्न करावें ।

तप्त कृच्छ्र और प्राजापत्य व्रतों का स्वरूप जैसे कि धर्मशास्त्र में बताया गया है वह यह है कि-तीन दिन तक गर्म जल पीवें तत्पश्चात् तीन दिन तक गर्म दूध पीवें एवं तीन दिन तक गर्म घृत पीये तथा तीन दिन तक हवा पीकर रहे ऐसा वारह दिन

त्र्यहमुष्णं पिबेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिवेत् ।
त्र्यहमुष्णं पिवेत् सर्पिः वायुभक्षोदिनत्रयम् ॥
पट्पलं तु पिवेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिवेत् ।
पलमेकं पिवेत् सर्पिः तप्तकृच्छ्रं विधीतते ॥
त्र्यहं प्रातः त्र्यहं सायं त्र्यहं भुङ्क्तेत्वयाचितम् ।
त्र्यहं पर च नाश्नीयात् प्राजापत्योविधिः स्मृतः ॥
सायं तु द्वादशग्रासाः प्रातः पञ्चदशस्मृताः ।
अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥
कुक्कुटाण्डप्रमाणं स्याद् यावद् वास्यविशेन्मुखे ।
एतद् ग्रासं विजानीयाच्छुध्यर्थं कायशोधनम् ॥

में सम्पन्न होनेवाला तप्तकृच्छ्र व्रत होता है इसतरह पराशरस्मृति में प्रतिपादन किया गया है। जिस दिन जलपान करे उसकी मात्रा छः पल है। दूध पीने की मात्रा तीन पल है एवं घृतपान की मात्रा एक पल है तथा शेष तीन दिन में केवल निर्जल रहना है। तथा प्राजापत्य कच्छ्र में तीन दिन तक प्रातःकाल में भोजन करता है तथा तीन दिन सायं कालमें भोजन करता है एवं तीन दिन तक विना मांगे हुये जो मिलजाये उसे भोजन करता है एवं शेष तीन दिन में कुछ भी भोजन नहीं करता है ऐसा प्राजापत्य व्रत की विधि अत्रिस्मृति में कहा गया है। जिन दिनों में सायंकाल भोजन करेगा उन दिनों में बारह-बारह ग्रास (कर) भोजन होगा। प्रातःकाल के भोजन में पन्द्रह-पन्द्रह ग्रास (कर) भोजन करें। अयाचित भोजन में २४ ग्रास भोजन करें शेष तीन दिनों में कुछ भी भोजन नहीं करें यह बारह दिनों का प्राजापत्य व्रत होता है। ग्रास का प्रमाण कुक्कुट के अण्डा के बरावर होना चाहिये अथवा जितना सरलता पूर्वक मुख में प्रवेश कर सके इसी को ग्रास समझना चाहिये यह व्रत देहको पवित्र करनेवाला व्रत होता है।

प्राजापत्य व्रत के सम्पादन करने में यदि सामर्थ्य का अभाव हो तो उसके बदले गोदान करे। गाय के अभाव में गाय के मूल्य के वरावर द्रव्य दान करें उसके अभाव में बीसमासा सुवर्णदान करे अथवा चालीस मासा सुवर्ण दान करें जैसा कि पराशरस्मृति में इन सवकी समानता बतायी गयी है। अथवा कृच्छ्र व्रत में दश हजार

प्राजापत्यव्रताचरणासामर्थ्ये गां दद्यात् । धेनोरभावे तन्मूल्यं द्रव्यं दद्यात् । तदभावे चत्वारिंशन्माषमितं सुवर्णं दद्यात् । तदभावे विंशतिः माषाणां दद्यात् पराशरस्मृतावेतेषां साम्यदर्शनात् । तद्यथा-

कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या उपवासस्तथैव च ।
धेनुप्रदानं विप्राय सममेतच्चतुष्टयम् ॥

ततोऽष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् ॥१४॥

ॐ अष्टश्राद्धविवेकः ॐ

अष्टसु श्राद्धेषु दैव, आर्ष, दिव्य, मानुष, भूत, पितृ, मातृ, आत्म, श्राद्धानि शास्त्रेषु प्रथितानि सन्ति । सर्वेषु मन्त्रेषु नान्दीमुख इति विशेषणं प्रयुज्यते । तद्यथा-उक्तम्-

गायत्री जप करे या उपवास करे दोनों समान है प्राजापत्य में गोदान ब्राह्मण के लिये करे। अथवा उसके मूल्य प्रदान करें। ये चारों ही समान कहा गया है तत्पश्चात् आठ प्रकार के दैव आदि श्राद्धों का सम्पादन करें ॥१४॥

आठ प्रकार के श्राद्ध होते हैं। उन आठ श्राद्धों में दैव श्राद्ध, आर्ष श्राद्ध, दिव्यश्राद्ध, मानुष श्राद्ध, भूत श्राद्ध, पितृ श्राद्ध, मातृ श्राद्ध, और आत्म श्राद्ध नामों से शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। सभी मन्त्रों में नान्दीमुख यह विशेषण प्रयोग किया जाता है। वह जैसे कहा गया है कि धर, ध्रुव, सोम, अहः, अनिल, अनल, प्रत्यूष प्रभास ये आठ वसु कहे गये हैं तथा मृगव्याध, सर्प, निगर्हति, अजैकपाद, अहिबुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु, और भग ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं। इसीप्रकार बारह, सूर्य, धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और वामन हैं ये सभी दैव श्राद्ध में देवता हैं। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु, नारद, ये सभी ऋषि श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। हिरण्य गर्भ और वैराजपति ये दोनों दिव्य श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। सनक, सनन्दन, सनातन कपिल, आसुर, बोढु तथा पञ्चशिख ये सात मनुष्य श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। पृथ्वी, जल, तेज वायु, आकाश, ये पाँच भूत श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। कव्यवाह, अनल, सोम, अर्यमा, अग्निष्वाता, वर्हिषद और सोमपा ये सव पितृ श्राद्ध के देवता कहे गये हैं। लक्ष्मी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया,

वसधोऽष्टौस्मृतास्तत्र रुद्रा एकादशापि वा ।
तथैव द्वादशादित्या दैव श्राद्धेषु देवताः ॥
मरीच्यत्र्यङ्गिरसो पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
प्रचेताश्च वशिष्ठश्च आर्षे च भृगु नारदौ ॥
दिव्ये हिरण्यगर्भश्च वैराजपतिरेव च ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥
कपिलश्चासुरश्चैव वोढः पञ्चशिखस्तथा ।
एते मानूषके श्राद्धे मनुष्याः सप्तदेवताः ॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
एतानि पञ्चभूतानि भूतश्राद्धे तु देवताः ॥
पितृश्राद्धे कव्यवाहनलः सोमौऽर्यमा तथा ।
अग्निष्वाता वर्हिषदः सोमपाश्चैव देवताः ॥
लक्ष्मीपद्मा शचीमेधा सावित्रीविजयाजया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातृ श्राद्धेषु देवताः ॥
आत्मश्राद्धे देवता तु परमात्मा प्रकीर्तितः ।
एकैकोमन्त्रवित्पिण्डो देयस्तूष्णीमथा परः ॥
सर्वमन्त्रेषु कर्त्तव्यं नान्दीमुखविशेषणम् ।
क्षन्तव्यमिति तान्ब्रूयात्प्रणम्य शिरसा ततः ॥

देवसेना, स्वधा, स्वाहा ये सोलह मातृ श्राद्ध में देवता हैं। आत्मा श्राद्ध में तो परमात्मा देवता कहे गये हैं। इसमें एक-एक पिण्ड मन्त्र ज्ञानी पण्डित मौन रहकर प्रदान कर तथा सभी मन्त्रों में नान्दीमुख यह विशेषण जोडे। तत्पश्चात् क्षमा करे यह कहकर प्रणाम करके श्राद्ध क्रिया को सम्पन्न करें।

तदनुसार मोक्ष की कामना रखनेवाला पुरुष स्नान सन्ध्या आदि नित्यकृत्य को सम्पन्न करके अधोवस्त्र एवं उत्तरीय श्वेत वर्ण का धारण कर पवित्र होकर ॐ रामायनमः ॐरामचन्द्राय नमः, ॐरामभद्राय नमः इन मन्त्रओं से आचमन कर ॐरघुनन्दनाय नमः वोलकर हाथ धोवे पूर्वाभिमुख वैठकर रक्षा दीप को संस्थापित करके जलके सहित त्रिकुशा से स्वयं को एवं श्राद्धीय वस्तुओं को अभिषिक्त करें। तत्पश्चात्

विहितस्नानादिनित्यकृत्यः मुमुक्षुः धारितशुक्लद्विवासाःशुचिःआचम्य प्राङ्मुखःउपविश्यरक्षादीपं संस्थाप्य कुशत्रयजलेन आत्मानंश्राद्धवस्तूनि च प्रोक्षेत्

ॐअपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सवाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

ततः यवपुष्पैः ॐश्राद्धभूम्यै नमः इति मन्त्रेण भूमिं त्रिं सम्पूज्य कुशत्रययवजलान्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्-

ओमद्य अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते चन्द्रे शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशि स्थानस्थितेषु सत्सु धरध्रुवसोमाहोऽनिलानलप्रत्यूषप्रभाससंज्ञानामष्टवसूनां मृगव्याधसर्प नैऋत्या जैकपादाहिर्बुध्न्यपिनाकिदहनेश्वरकपालिस्थाणुमगाद्यानामेकादश रुद्राणाम्, धातृमित्र अर्यमाशक्रवरुणांशभगविवस्वतपूषासवितृत्वष्ट्रावामनाभिधानां द्वादशादित्यानाञ्च देवानां नान्दीमुखानां द्वितीयवर्गीयाणां मरीच्यत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलहश्क्रतु प्रचेतो वशिष्ठ भृगुनारदानां ऋषीणां नान्दीमुखानां तृतीयवर्गीययोः हिरण्यगर्भवैराजपत्योः नान्दीमुख्योः, चतुर्थवर्गीयाणां सनकसनन्दनसनातनकपिलासुरिवोढुपञ्चशिखानां मानुषाणां नान्दीमुखानां, पञ्चमवर्गीयाणां पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां भूतानां नान्दीमुखानां, षष्ठवर्गीयाणां कव्यवाडनलसोमार्यमाग्निष्वात्तवर्हित्सोमपानां पितृणां नान्दीमुखानां, सप्तमवर्गीयाणां लक्ष्मीपद्माशचीमेधा सावित्री विजयाजया देवसेना स्वधा स्वाहानां मातृणां नान्दीमुखानाम् अष्टमवर्गीयस्य परमात्मन आत्मनः नान्दीमुखस्य भगवदाज्ञया भगवत्कैंकर्यरूपश्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहण कर्मनिमित्तकमष्टवर्गीय श्राद्धमहं करिष्ये ॥१५॥

उसमें ॐअपवित्रः पवित्रो वा. यह मन्त्र पढे। तत्पश्चात् यव एवं पुष्प के साथ ॐश्राद्ध भूम्यै नमः इस मन्त्र से तीनवार भूमि का पूजन करके त्रिकुशा यव एवं जल लेकर संकल्प करें। ओमद्य. आदि मन्त्रों को श्राद्धमहं करिष्ये पर्यन्त संकल्प में उच्चारण करें। तत्पश्चात् तीनवार श्रीराम गायत्री ''ॐदाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्'' इस मन्त्र का एवं ॐदेवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमोनमः ॥ इस मन्त्र का तीनवार जप करें ॥१५॥

卐 कुशत्रययवजलान्यादाय→

(१) ॐश्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गाणां नान्दीमुखानां श्राद्धसम्बन्धिनः सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः इदमासनं वो नमः । इतिमन्त्रेण विश्वेभ्यो देवेभ्यः उत्तराग्रमासनं दद्यात् । अन्येभ्यस्तु पूर्वाग्रान् कुशान् आसनरूपेण वक्ष्यमाणमन्त्रैः दद्यात् (२) ओमद्य प्रथमवर्गीयाणाम् अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यानां देवानां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः । (३) ॐअद्य द्वितीयवर्गीयाणां मरीच्यादिदश ऋषीणां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः । (४) ओमद्य तृतीयवर्गीययोः हिरण्यगर्भादिदिव्ययोः नान्दीमुखयोः इदमासनं वो नमः ।(५) ओमद्य चतुर्थवर्गीयाणां सनकादि सप्तमनुष्याणां नान्दीमुखानां इदमामनं वो नमः । (६) ओमद्य पञ्चमवर्गीयाणां पृथिव्यादिपञ्चभूतानां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः ।(७) ओमद्य षष्ठवर्गीयाणां कव्यवाडादिपितृणां नान्दीमुखानां इदमासनं वो नमः ।(८) ओमद्य सप्तमवर्गीयाणां लक्ष्म्यादिमातृणां नान्दीमुखानाम् इदमासनं वो नमः । (९) ओमद्य अष्टवर्गीयस्य परमात्मन आत्मनः नान्दीमुखस्य इदमासनं ते नमः ।

卐 ततः वक्ष्यमाणैः मन्त्रैः श्राद्धीयान् देवान् आवाहयेत्→

(१) ॐ विश्वान्देवानहमावाहयिष्ये । इत्युच्चार्य ॐ विश्वेदेवा सऽआ

संन्यास ग्रहण करनेवाला मुमुक्षु पुरुष दैव आदि आठ प्रकार के श्राद्धों को प्रारम्भ करने के पूर्व इन उपकरणों को सावधानी से एकत्रित करालेवें । १-विशुद्ध बालुका से एक इंच ऊँची, एवं एक एक फुट का चतुष्कोण दश वेदी बनावें । जिन दो पूर्व में आठ उससे लगा हुआ पश्चिम में पलास पत्र का १० पुटक-पुटक के दो भाग में पत्रका मोड मूल की ओर हो जो तिनका से गूंथा हो गन्ध पुष्प धूपदीप फलादि नैवेद्य, नीवार चूर्ण, यवचूर्ण तण्डुल (चावल) दही घी खीर यव तिल पुष्प कच्चा धागा, जल से भरा हुआ घडा लोटा पञ्चपात्र अर्घा, आचमनी, मूल सहित तीन पत्रवाला दर्भ की मुष्टि, १० त्रिकुशा, दो मोटक, १० वस्त्र पिष्टि, संकेतित वस्तुओं का दश पिण्ड भात, गङ्गाजल १० भोजन योग्य पत्ता तथा अन्य संकेतित श्राद्धोपकरण एकत्रित करने के पश्चात् श्राद्ध आरम्भ करें ।

गत श्रृणुतामऽइमऽहवम् । इदम्बर्हिर्न्निषीदत । इत्याबाह्य, ॐ ''यवोसि यवयास्मद्वेषो यवयाराती:'' इति विश्वेदेवपात्रे यवान् विकिरेत्। ततः प्रार्थचेत्-ॐ ''विश्वेदेवा श्रृणुतेमऽहवम्मेयेऽअन्तरिक्षे यऽउपद्य विविष्ट्व । येऽअग्निजिह्वाऽउतवाययत्राऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयद्ध्वम् ।''

आगच्छन्तु महाभागाविश्वेदेवा महाबलाः ।
ये चात्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥

ततः ओम् ''नान्दीमुखान्देवादीनहमावाहयिष्ये ।'' इत्यावाह्य ''ॐ यवोऽसि यवयास्मद्वेषो यवयाराती: इति पठित्वा देवान्नपात्रेषु यवान् विक्षिपेत् ।'' अन्येषां कृते तु-

ॐ ''आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वाताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधयामयदन्तोधि व्रुवन्तु ते वन्त्वस्मान्'' । इति पठित्वा पितृपात्रे तिलान् प्रक्षिपेत् ।

ततः सर्वेषु अर्धपात्रेषु ''ॐपवित्रेस्थो वैष्णव्यो सवितुर्वहः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्'' । इति मन्त्रेण पवित्राणि स्थापयित्वा ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात् इति श्रीरामगायत्र्या ॐ शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये । शन्नोरभिस्त्रवन्तुनः'' इति मन्त्रेण च पुटकेषु जलं क्षिपेत् । ॐ यवोसि इति मन्त्रेण पुटकेषु यवान् क्षिपेत् । ततः

पूर्वाभिमुख वैठाकर त्रिकुशा जव एवं जल दाहिना हाथ में लेकर उन-उन सङ्कल्पों को पढकर विश्वेदेव से प्रारम्भकर परमात्मा पर्यन्त देवताओं को जो-दैव आदि आठ श्राद्धों के देवता हैं, उन्हें मन्त्रों के अनुसार एक एक दर्भ का आसन प्रदान करें। श्राद्धीय त्याग में यह ध्यान रखना चाहिये कि-ब्रह्मा आदि देवताओं को ब्रह्म तीर्थ से ऋषियों को ऋषि तीर्थ अन्य देवताओं को देव तीर्थ से तथा पितरों को पितृ तीर्थ से त्याग करें ।

दैव आदि अष्टवर्गीय देवताओं को आसन प्रदान करने के पश्चात् विश्वेदेव से लेकर परमात्मा पर्यन्त आठ तत्तद्वर्गीय देवताओं को निर्दिष्ट मन्त्रों के द्वारा आवाहन करें। तथा उन उन देवताओं के भोजन पात्र में मन्त्र पढकर उनके भोजन पात्रों में

प्रतिपुटकेतूष्णीं गन्धपुष्पे क्षिपेत् । तत्पश्चात् प्रथमम्पुटकं देवार्घपात्रं वामहस्ते संस्थाप्य तत्र स्थितं पवित्रं विश्वेदेवभोजनपात्रे निधाय वक्ष्यमाणमन्त्रं पठित्वा जलान्तरं दत्वा पवित्रोपरि किञ्चिज्जलं दद्यात् । ॐ"या दिव्याऽआपः पयसासम्बभूवुर्याऽआन्तरिक्षाऽउतपार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान् आपःऽशिवाः श७स्योना सुहवा भवन्तु ।"

पुनः कुशत्रययवजलान्यादाय-

ओमद्याष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गीयाणां नान्दीमुखानां श्राद्धसम्बन्धिनः सत्यवसुसंज्ञकाः विस्वेदेवाः एषवो हस्तार्घो नमः । इति पवित्रोपरि अर्घजलं दद्यात् । पूर्वोक्तमेवमन्त्रं पठित्वा सर्वेषु देवादीनां भोजनपात्रेषु प्रतिपात्रम्पवित्रं निधाय प्रतिपुटके किञ्चिदुदकान्तरं दत्वा ॐ या दिव्या आपः० इति मन्त्रेण कुशत्रययवजलान्यादाय-

ओमद्य प्रथमवर्गीयाणामष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यानां देवानां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घे नमः । ओमद्य द्वितीयवर्गीयाणां मरीच्यादि दशऋषीणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य तृतीयवर्गीययोः हिरण्यगर्भादिदिव्ययोः नान्दीमुखयोः एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य चतुर्थवर्गीयाणां सनकादिसप्तमनुष्याणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः ।

यव विखेरे । एवं पितृ पात्र में तिल विखेरे । तत्पश्चात् दश अर्घ पात्रों में "पवित्रेस्थो" इस मन्त्र के द्वारा दर्भ के अग्रभाग के पत्रों से पवित्री-बनाकर पुटकों में पवित्री स्थापित करें । तत्पश्चात् श्रीरामगायत्री एवं 'शन्नो देवी...' इस मन्त्र को पढकर प्रत्येक पुटक में जल भरे । इसके वाद यवोऽसि...इस मन्त्र से प्रत्येक पुटक में यव स्थापित करें । एवं प्रत्येक पुटक में गन्ध पुष्प मौन रहकर ही डालें । इसके वाद प्रथम पुटक को उठाकर बायाँ हाथ में व्यवस्थित रखकर उसमें विद्यमान पवित्री को विश्वेदेव के भोजन पात्र में स्थापितकर आगे कहा जाने वाला मन्त्र पढकर दूसरा जल भी उस पुटक में पुनः डालकर पवित्री के ऊपर कुछ जल प्रदान करें । एवं पुटक को पूर्ववत् स्थापित कर दें । पुनः त्रिकुशा यव एवं जल दाहिना हाथ में लेकर पूर्वक्रम से ही या दिव्या आपः...इस मन्त्र से सभी को अर्घ प्रदान में पढकर क्रमशः प्रत्येक पुटक को बायाँ हाथ में रखकर पवित्री दैव आदि श्राद्धीय देवताओं के भोजनपात्र में निकाल

ओमद्य पञ्चमवर्गीयाणां पृथिव्यादिपञ्चभूतानां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य षष्ठवर्गीयाणां कव्यादिपितृणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य सप्तमवर्गीयाणां लक्ष्म्यादिमातृणां नान्दीमुखानां एष वो हस्तार्घो नमः । ओमद्य अष्टमवर्गीयस्य परमात्मन आत्मनः नान्दीमुखस्य एष ते हस्तार्घो नमः ।

ततोऽवशिष्टजलपवित्रयुतं प्रथमं देवार्घपात्रमादाय "ॐविश्वेभ्यः देवेभ्यः स्थानमसि" इति देवासनदक्षिणभागे उत्तानमेवार्घपात्रं स्थापयेत् । एवं सर्वत्र अवशिष्टजलपवित्रयुतं पात्रमादाय-

ॐअष्टश्राद्धीयदेवेभ्यः स्थानमसि । उत्तानमेवार्धपात्रं स्यापयेत् ।

ततः गन्धादिकं दद्यात्-गन्धादिकं दत्वा संकल्पं कुर्यात्-

ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयानामष्टवर्गाणां नान्दीमुखानां श्राद्धसम्बन्धिनः सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः एतानि गन्धपुष्प धूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवासांसि वो नमः । ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गष्टश्राद्धीयाष्टवर्गीयाणां देवर्षिदिव्यपितृमातृकमानुषभौतिकात्मानां नान्दीमुखानायेतानि गन्धादीनि वो नमः ।

अन्नपरिवेषणम्-

ततः विश्वेदेवस्थाने अष्टसु स्थानेषु च जलेन चतुष्कोणमण्डलं कुर्यात्-

यथा बाणायुधो रामः त्रैलोक्यम्परिरक्षति ।

एवं मण्डलतोयन्तु सर्वभूतानि रक्षतु ॥

कर रख दें । पुटक में थोडा दूसरा जल डालकर क्रमशः दैव से लेकर आत्म पर्यन्त श्राद्धीय देवताओं के पात्र में अर्घ प्रदान करें एवं कुछ अवशिष्ट जल सहित पुटक को यथापूर्व रख दें । प्रत्येक अर्घ प्रदान में अलग-अलग त्रिकुश यव एवं जल लेना चाहिये तथा उसमें से पवित्री निकालकर देवान्नपात्र में रखकर पुटक में जलान्तर प्रदान करना एवं अर्घ देना अपेक्षित है । अवशिष्ट जल से युक्त तथा पवित्री से युक्त देवार्घ पात्र को "ॐ विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्थानमसि" यह कहकर देवासन के दक्षिण भाग में उत्तान ही रखना चाहिये एवं अन्य अष्टश्राद्धीय देवताओं के लिये भी "अष्टश्राद्धीय देवेभ्यः स्थानमसि" उत्तान ही अर्घपात्रों को उन देवताओं के आसन के समक्ष रखें ।

ततः सर्वस्मात् पिण्डद्रव्यात् किञ्चित्-किञ्चित् निःसार्य सजले पुटकादौ हस्तेनैव सघृतमन्नमादाय पुटकस्थद्वयजले ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा ॐ सोमाय पितृमते स्वाहा आहुतिद्वयं जुहुयात् ।

ततः अपसव्येन दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः मोटकतिल जलान्यादाय किञ्चिदन्नासं गृहीत्वा ॐ इदमन्नमेतद् भूस्वामी पितृभ्यो नमः'' इति भूस्वामी पितृभ्यः दद्यात् ।

ततः सव्यं कृत्वा प्राङ्मुखः आचम्य सर्वत्र नवसु स्थानेषु परिवेषणं तत्र अष्टवस्वाद्यारभ्य अष्टसु स्थानेषु फलम् नीवारस्य दध्योदनम्, यवचूर्णम् दध्योदनम्, दध्योदनम्, क्षीरम्, क्षीरम्, किलाटः (मावा) यथाक्रमेण श्रीरामगायत्र्या परिवेषणं कुर्यात् । घृतं जलञ्च तत्रोपनीय-ॐ मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्तोषधीः । मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव॑ रजः । मधुद्यौरस्तुनः पिता । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ २ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः । ॐ मधु मधु मधु इति ऋक्त्रयं श्रावयित्वा भोजनपात्रं स्पृशेत् ।

तद्यथा-उत्तानपाणिभ्याम्-

ॐ''पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽअमृतेऽअमृतं जुहोमि स्वाहा । ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा॑सुरे स्वाहा । ॐ कृष्णहव्यमिदं रक्षमदीयम्'' ॥ इति पठित्वा अंगुष्ठनिवेसनम्- ''ॐ इदमन्नम्'' इत्यन्ने । ''ॐ इमा आपः'' इति जले । ॐ इदमाज्यमिति घृते । ॐ इदं हविः इति पुनरन्ने । ॐ यवोसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः'' इति यवान्निक्षिप्य ।

एवं मौन रहकर ही गन्धपुष्प आदि अर्पित करें । तत्पश्चात् पुनः संकल्प करें । हाथ में पूर्ववत् त्रिकुशा यव एवं जल लेकर उन-उन देवताओं के उद्देश्य से विश्वेदेव से लेकर आत्म पर्यन्त देवताओं को संकल्प पूर्वक गन्धपुष्प एवं वस्त्रों का उत्सर्ग (दान) करें ।

पुनः उन विश्वेदेव से लेकर परमात्मा पर्यन्त देवताओं के पात्र में अन्न परोशने

यवजलान्यादाय ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धीयाष्टवर्गीयाणां देवर्षिदिव्यपितृमातृकमानुषभौतिकात्मनां नान्दीमुखानां इदमन्नं सोपकरणं वो नमः ।

ततः बद्धकरसम्पुटः-ओम् अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्भवेत् । तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु । इति जपेत् । ततः श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपित्वा । ॐ मधु मधु मधु इति । ॐ मधुवाता...अन्यानि पुरुषसूक्तादीनि जपेत् जापयेद्वा । विकरदानम् ततः कुशानास्तीर्य जलेन प्रोक्ष्य सयवधृतमन्नमादाय-

ॐअग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्रदग्धाः कुले मम ।

भूमौ दत्तेनतृण्यन्तु तृप्ता यान्तु परांगतिम् ॥

इति मन्त्रेण कुशोपरि विकिरदानं कुर्यात् । ततः आचम्य हरिं स्मृत्वा श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपेत् । ततः उत्तरोत्तरक्रमेण प्रादेशमात्राणि अष्टौ स्थण्डिलानि पिण्डार्थं कृत्वा सर्वत्र प्रागग्रां रेखां दर्भमूलेन-

ॐ अपहता असुरा रक्षाᳬसि वेदिसदः, इति मन्त्रेण कुर्यात् । ततः रेखायाः उपरिप्रत्येकम्-

ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुराः सन्तः स्वधयाचरन्ति । परापुरोनिपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥

इतिमन्त्रेण अंगारां भ्रामयेत् । ततः रेखोपरि प्रत्येकं कुशत्रयमास्तीर्य श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपित्वा, अष्टौ अवनेजनपात्राणि जलयवगन्धपुष्पयुतानि स्थापयेत् । ततः प्रतिवेद्यां सावशेषमवनेजनं कुशोपरिदद्यात् ।

के पहले सभी वेदी को जल से चतुष्कोण मण्डल बनाकर घेर दें । तथा प्रार्थना करे कि जिसप्रकार धनुर्बाण आयुध धारी भगवान् श्रीरामजी तीनों लोकों का सभी तरह से संरक्षण करते हैं उसी प्रकार यह मण्डल का जल प्राणी मात्र की रक्षा करे। तत्पश्चात् सभी पिण्ड द्रव्यों से थोडा-थोडा निकालकर जल सहित दशवाँ पुटक में हाथ से ही घी सहित अन्न को लेकर दो पुटकों के जल में "ओम् अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा एवं सोमाय पितृमते स्वाहा" इन मन्त्रों को पढकर दो आहुति प्रदान करें । ये तीनों ही पुटक पूर्ववर्णित पुटकों से अतिरिक्त होंगे । तत्पश्चात् अपसव्य होकर (दाहिना कन्धा

(१) ओमद्य प्रथमवर्गीयाः अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्या देवता नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(२) ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(३) ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्यनान्दीमुखयोः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निक्ष्वेथां वां नमः ।

(४) ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(५) ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः पृथिव्यादयः पञ्चभूताः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(६) ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादयः पितरः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(७) ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादयः मातरः नान्दीमुख्यः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निग्ध्वं वो नमः ।

(८) ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुखः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डस्थाने अत्रावने निक्ष्व ते नमः ।

पर एवं वायाँ बाहु के नीचे जनेऊ होता है उसको अपसव्य कहते हैं) दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके बायाँ जाँघ गिराकर मोटक तिल एवं जल लेकर थोडासा अन्न का हिस्सा उठाकर इदमन्नमेतद्...मन्त्र पढकर भू-स्वामी के पितरों को अन्न प्रदान करें।

मूल सहित तीन दर्भ को लेकर दो का मूल एकतरफ एक का मूल दूसरे तरफ करके तीनों दर्भों को बराबर रखकर ढाइवार ऐंठकर एकके मूल से सभी मुडे हुये कुशों को ढाइवार लपेटकर बान्धते हैं उसे मोटक कहा जाता है।

तत्पश्चात् पुनः सव्य होकर (अर्थात् बायाँ कन्धा पर एवं दाहिना बाहु के नीचे यज्ञोपवीत को करके) पूर्वाभिमुख होकर आचमन करके सभी नौ भोजन पात्रों में भोजन परोसकर उनमें आठ वसुओं से लेकर परमात्मा पर्यन्त आठों पात्रों में प्रथम

पिण्डदानम्-ततः प्रथमवेदिकायां कदलीफलेन देवेभ्यः पिण्डदानम्। तद्यथा-हस्ते जलयवत्रिकुशांश्च गृहीत्वा-

ओमद्य प्रथमवर्गीयाः अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्या देवता नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीय पिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः द्वितीयवेदिकायां दधिमिश्रितनीबारेण ऋषिभ्यः-

ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः तृतीयवेदिकायां यवपिष्टेन दिव्याभ्याम्-

ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्ययोः नान्दीमुखयोः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वां पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः चतुर्थवेदिकायाः मनुष्येभ्यः दध्योदनाभ्याम्। ओमद्य चतुर्थ वर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः पञ्चमवेदिकायां भूतेभ्यः दधिमिश्रिततण्डुलेन ओमद्य पञ्चमव र्गीयाः पृथिव्यादयः पञ्चभूताः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात्।

ततः षष्ठवेदिकायां पितृभ्यः हविषा-

में फल, द्वितीय में निवार, तृतीय में दही भात, चतुर्थ में जौ का आटा, पाँचवाँ में दही भात, छठा में दही भात, सातवाँ एवं आठवाँ में दूध भात एवं नौवाँ में मावा यह विश्वेदेव से लेकर परमात्मा पर्यन्त पात्रों में प्रतिपात्र में श्रीरामगायत्री पढकर परोसे। सभी पात्रों में घृत एवं जल रखकर ओम् मधुव्वाता...इस मन्त्र को पढकर प्रत्येक भोजन पात्र का स्पर्श करें। पुनः एक-एक पात्र में दोनों ही उत्तान हाथों को लगाकर "ओम् पृथिवी ते पात्रम्"...आदि पढकर ओम् कृष्णकव्यमिदं रक्षमदीयम् तक उच्चारण करके बायाँ हाथ उत्तान की अवस्था में पूर्ववत् रखे हुये दाहिना हाथ की

ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादयः पितरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः। द्वितीयं पिण्डं तूष्णीमेव दद्यात् ।

ततः सप्तमवेदिकायां मातृभ्यः हविषा-

ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादयः मातरो नान्दीमुख्यः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष वः पिण्डो नमः । द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात् ।

ततः अष्टमवेदिकायां आत्मनः दुग्धपिण्डेन-

ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुखः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे एष ते पिण्डो नमः । ततः द्वितीयपिण्डं तूष्णीमेव तत्पूर्वतो दद्यात् ।

ततः दर्भमूले करं प्रोक्ष्य आचम्य श्रीरामगायत्रीं त्रिर्जपित्वा-

ॐ अत्रपितरो मादयध्वं यथाभाग मा वृषायध्वं, इति उत्तराभिमुखो श्वासं नियमयन् तेन पथा यथा पूर्वं मुखं परिवर्तयन् "ॐ अमीमदन्तपितरो यथा भागमावृषायिष्ट । इति पठन् श्वासं विसृतेत् ।

ततः अवनेजनावशिष्टजलेन प्रत्यवनेजनं दद्यात् ।

ओमद्य प्रथमवर्गीया अष्टवसवैकादशरुद्रद्वादशोदित्यदेवता नान्दी मुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरिप्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः।

अंगूठा को अन्न में लगाकर "ओम् इदमन्नम्" यह उच्चारण करे। तत्पश्चात् जल में लगाकर "ओम् इमा आपः" एवं घृत में "इदमाज्यम्" तथा इदं हविः कहकर पुनः अन्न में दाहिना अंगूठा से स्पर्श करे तथा अन्न के ऊपर ओम् यवोसि...यह पढकर जौ, अन्न पर विखेरे। यह व्यवहार प्रत्येक अन्नपात्र में इन्हीं मन्त्रों से तथा इसी क्रमसे करें।

पुनः यव एवं जल लेकर सभी पात्र का उत्सर्ग करे। तत्पश्चात् हाथ जोडकर ओम् अन्नहीनम्...आदि मन्त्र पढकर तीनवार श्रीरागायत्री जपकर ओम् मधु, मधु, मधु, मधुव्वाता० तथा पुरुषसूक्त का पाठकरे अथवा किसी दूसरे के द्वारा पाठ करावें। पुनः वेदियों के आस पास में दर्भ विखेर कर जलसे सिञ्चितकर जौ एवं घृत सहित अन्न लेकर ओम् अग्निदग्धां...आदि मन्त्र पढकर पूर्व में विखेरे हुये कुश के ऊपर अन्न को विखेरे।

ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः।

ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्यौ नान्दीमुखौ श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निजातं वां नमः।

ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः।

ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः पृथिव्यादिपञ्चभूताः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः।

ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादिपितरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः।

ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादि मातरो नान्दीमुख्यः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निग्ध्वं वो नमः।

ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुखः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डोपरि प्रत्यवने निक्ष्व ते नमः।

तत्पश्चादाचम्य प्राणानायम्य श्रीरामगायत्रीं त्रिं जपित्वा श्राद्धीय देवादीन् प्रणम्य क्रमेण सर्वेभ्यः पिण्डेभ्यः सूत्रमादाय वेदिकायाः पिण्डोपरि सूत्रं दद्यात् वक्ष्यमाणं मन्त्रं पठन् सूत्रं दद्यात्।

पुनः आचमन करके हरिस्मरण कर तीनवार श्रीराम गायत्री जपकरे। पुनः उत्तर-उत्तर क्रमसे एक-एक प्रादेश के आठ स्थण्डिल पिण्ड दान के लिये बनाकर सभी स्थण्डिलों पर पूर्व दिशा में जिसका अग्रभाग है अर्थात् पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर दर्भमूल से रेखा खींचे। यह रेखा आठों स्थण्डिलों पर होना चाहिये। तथा रेखा खींचने में "अपहता असुरा रक्षाँसि वेदिषदः" इस मन्त्र से रेखा करें। तत्पश्चात् रेखा के ऊपर अंगार किसी साधन से पकडकर "ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः"...इस मन्त्र को पढकर प्रत्येक रेखा पर जलता हुआ अंगार घुमावें। आग का अंगार घुमाने के पश्चात् प्रत्येक रेखा पर तीन-तीन कुश विछाकर तीनवार श्रीरामगायत्री को जप करे। पुनः आठ पुटकों में अवनेजन हेतु जल, यव, गन्ध, पुष्प, स्थापित करके प्रत्येक वेदी के ऊपर पूर्व में दिया गया अर्घ से अवशिष्ट अवनेजन दर्भ के ऊपर प्रदान करें।

"ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वा गृहान्नः पितरो दत्तसतोवः पितरो देष्म ॥" एतद्वः पितरो वासाः । एतद्वो देवावासः । एतद्वो ऋषयोवासः । एतद्वां दिव्यौवासः । एतद्वो मनुष्यावासः । एतद्वो भूतावासः । एतद्वो पितरो वासः । एतद्वो मातरोवासः । एतत्ते आत्मन् वासः ।

ततः कुशत्रय यवजलान्यादाय-वक्ष्यमाणैः संकल्पवचनैः पिण्डेषुवासं उत्सृजेत्-

ओमद्य प्रथमवर्गीयाः अष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यदेवताः नान्दी मुखाः श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः मरीच्यादिदशर्षयः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य तृतीयवर्गीयौ हिरण्यगर्भादिदिव्यौ श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणा ङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वांवासो नमः ।

ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः सनकादिसप्तमनुष्याः नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः पृथिव्यादिपञ्चभूता नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य षष्ठवर्गीयाः कव्यवाडादिपितरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णवसंन्यास ग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ओमद्य सप्तमवर्गीयाः लक्ष्म्यादिमातरो नान्दीमुखाः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गाष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

तथा अवनेजन दिये गये उन-उन संकल्प मन्त्रों को पढें । इसतरह एक से लेकर आठ स्थण्डिलों पर इसी क्रम से प्रयोग करें । प्रत्येक स्थण्डिल पर मन्त्र पढकर अवनेजन प्रदान करने के पश्चात् पिण्ड प्रदान करें ।

॥ पिण्डदान ॥

पहली वेदी पर कदली आदि किसी शुद्ध फल से देवताओं के लिये पिण्डदान

ओमद्य अष्टमवर्गीयः परमात्मन्नात्मनः नान्दीमुख्योः श्रीवैष्णव संन्यासग्रहणाङ्गष्टश्राद्धे पिण्डयोः एतद्वोवासो नमः ।

ततो गन्धपुष्पधूपवस्त्रताम्बूलादिभिः तूष्णीमेव पिण्डान् पूजयेत् । तत्पश्चा च्चटोपरि "ॐ शिवा आपः सन्तु" इति जलम्, ॐ सौमनस्यमस्तु इति पुष्पम्, ॐ अक्षताञ्चारिष्टञ्चास्तु इति तण्डुलान् निक्षिप्य कुशत्रय यवजलान्यादाय-

ओमद्य श्रीवैष्णवसंन्यासग्रहणाङ्गष्टश्राद्धीयाष्टवर्गीयाः देवर्षिदिव्य पितृमातृकमानुषभौतिकात्मनः नान्दीमुखाः दत्तैतदन्नपानादिः प्रीयन्ताम् । ततः प्रतिवेदिपिण्डोपरि अक्षय्योदकं प्रदाय जलधारां दद्यात् । तत्र जलधारा प्रदाने वक्ष्यमाणाः मन्त्रा सन्ति ।

ॐ अघोराः देवाः सन्तु, ॐ अघोराः ऋषय सन्तु, ॐअघोरौ दिव्यौं स्याताम् । ॐ अघोराः मानुषा सन्तु, ॐ अघोराणि भूतानि सन्तु, ॐ अघोराः पितरः सन्तु, ॐ अघोराः मातरः सन्तु, ॐ अघोरः आत्मा अस्तु ।

ततो बद्धकरसम्पुटः सन् आशिषः प्रार्थयेत् । ॐ गोत्रन्नोवर्द्धतां, दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम् । वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो माव्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्तु । अन्नं च नो बहुभवेत् । अतिथींश्च लभेमहि । याचिता रश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन । एताः सत्याः आशिषः सन्तु ।

करें। तथा हाथ में जस यव एवं त्रिकुशा को लेकर ओमद्य प्रथमवर्गीयाः इत्यादि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें । एवं दूसरा पिण्ड मौन रहकर ही दे । पुनः द्वितीय वेदिका में दही से मिश्रित नीवार से बनाहुआ ऋषियों को पिण्डदान करें । एवं ओमद्य द्वितीयवर्गीयाः...इत्यादि मन्त्र पढें। दूसरा पिण्ड मौन होकर ही दे । इसके वाद तीसरी वेदी पर पिसा हुआ यव से दिव्यों को ओमद्य तृतीयवर्गीयौ...इत्यादि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें। तथा दूसरा पिण्ड मौन रहकर ही दें। चौथी वेदी पर मनुष्यों के लिये दहीभात के पिण्ड लेकर ओमद्य चतुर्थवर्गीयाः आदि मन्त्र पढकर पिण्डदान करें। एवं दूसारा पिण्ड मौन रहकर ही दें। तत्पश्चात् पञ्चम वेदी पर भूत के लिये दही मिला हुआ चावल के पिण्ड से ओमद्य पञ्चमवर्गीयाः... आदि मन्त्र पढकर पिण्ड प्रदान करें। एवं दूसरा पिण्ड मौन रहकर प्रदान करें। तत्पश्चात् छठी वेदी पर हविष्यान्न से